पराजित

[अछूत नारी जीवन पर लिखा गया उत्कृष्ट मौलिक उपन्यास]

लेखक

कमल शुक्ल

प्रकाशक

विक्रेता प्रकाशन संघ

२६३२ कूंचा माईदास, बाजार सीताराम

दिल्ली-६

***

आकाश में पूर्णिमा का चांद हँस रहा था और जगमगाते तारे नीले अम्बर में ऐसे लग रहे थे, मानो चांदी के फूल हों। कलेजा कंपा देने वाला शीतल समीर डोल रहा था और चाँदनी छिटकी थी अपने पूर्णांशों में धरती पर। गोरे चाँद ने रात को उजला कर उसको निखार दिया था। यह माघी पूर्णिमा की रात थी। आज रविदास जयन्ती थी, चमारों का विशेष और महान पर्व। दिन में नगर की सड़कों पर जुलूस निकला और अब स्थान-स्थान पर कीर्तन और भजन का आयोजन हो रहा था।

बलवन्ती अपनी अन्धी माँ हरदेई के साथ चमनगंज से अनवरगंज चमरहिया में कीर्तन सुनने आई थी, क्योंकि वहां का कीर्तन हर साल सब से बढ़कर होता था।

कीर्तन का समा बंध रहा था। बाजे-गाजों के साथ कीर्तन के स्वर बुलन्द हो रहे थे। प्रसन्नता के आधिक्य से लोग स्वर-लहरियों पर झूम-झूम उठते। आज इस वर्ग के लिए स्वर्णिम दिन था, क्योंकि उनके संत महात्मा-रविदास की पावन जन्म तिथि थी। तभी तो लोग माघ की शीत भरी रात में खुले आकाश के नीचे आनन्दातिरेक से मगन हो रहे थे। पण्डाल अधिक बड़ा नहीं था। अतः लोग बाहर बैठे थे और उनके पीछे खड़े हुए लोगों की भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। एक मुहल्ला ही नहीं, बल्कि कई मुहल्लों के लोग उमड़ आये थे और इसमें कई वर्गों के लोग थे जो कीर्तन श्रवण करने का लोभ नहीं संवरण कर पाये और भगवान रविदास के प्रति श्रद्धा में झुके हुए भीड़ में आ, आगे घुसने का प्रयत्न कर रहे थे। स्त्रियां एक ओर बैठी थीं। बच्चों को बड़ी सावधानी

के साथ पण्डाल के नीचे बैठाया गया था। इसके अतिरिक्त पुरुषों की तो जैसे बाढ़ ही आ गई थी।

आज की रात जागरण की थी। रात भर कीर्तन चलने का आयोजन था। नेवाजी भी अपने घर से कीर्तन सुनने आया था। वह तख्तों के पास जिस पर कीर्तन मंडली बैठी थी, आसीन था। कीर्तन चल रहा था। लोग श्रद्धा से ओत-प्रोत हो रहे थे। बच्चे तक ताली बजा कर अपने सिर हिलाकर अपनी प्रसन्नता सूचित कर रहे थे।

नेवाजी की दृष्टि जब पीछे घूमी तो उसने देखा बलवन्ती उसके पीछे निकट ही बैठी है, और साथ ही उसकी माँ हरदेई भी। उस समय ऐसा अवसर था कि कोई भी होठ पर से होठ नहीं हटा रहा था कि कहीं कीर्तन गायकों के स्वर में बाधा न पड़े। थोड़ी देर बाद जब भजन समाप्त हुआ तो साजिन्दों के साज रुक गए और गायक भी कुछ क्षण के लिए विश्राम करने लगे। इस बीच मंद-मंद जन कोलाहल मुखरित हो उठा और नेवाजी मंद-मंद मुस्कराता हुआ बलवन्ती के मुख पर दृष्टि टिका पूछने लगा-"अरे बलवन्ती तुम! मुझे नहीं मालूम था कि तुम और काकी भी आओगी, नहीं तो जमालो को भी तुम्हारे साथ कर देता।

इस पर बलवन्ती मुस्करा कर रह गई। नारी सुलभ संकोच ने उसका सिर नत कर दिया और हरदेई नेवाजी का स्वर पहचान कर उससे कहने लगी- "कौन. नेवाजी! अरे पहले क्यों नहीं बताया था भइया, बहू को मैं साथ लिवा लाती। मैं तो खुद ही नहीं आ रही, थी, अपने मुहल्ले में भी तो कीर्तन होता है, लेकिन यह बलवन्ती नहीं मानी; आखिर खींच ही लाई।'

'अच्छा है काकी, यह तो चलता ही रहता है, यहाँ का कीर्तन सुनने दूर-दूर के मुहल्लों के लोग आते हैं।" यह कह कर नेवाजी बलवन्ती की ओर देखने लगा, कुछ और कहने के लिए उसके होठ हिले ही थे कि कीर्तन आरम्भ हो गया।

रात आधी हो गई और ऐसा लगता था कि अभी उसका पहला प्रहर ही है। गाते-गाते दो गायकों का गला वैठ गया था। लेकिन आयोजन में तनिक भी त्रुटि नहीं आने पाई। जिस प्रकार गोरी रात इस समय अपने पूर्ण निखार पर थी वैसे ही कीर्तन मुखर-मुखर कर रह जाता था। नेवाजी बार-बार पीछे घूम कर देखने लगता शायद उसका केन्द्र विन्दु थी, बलवन्ती ! और बलवन्ती लाज से सुकड़ी हुई, संकोच से गड़ी हुई, अपनी शर्मीली दृष्टि भगवान रविदास की प्रतिमा पर टिकाए बैठी थी। जब भी उसकी दृष्टि नेवाजी से मिल जाती वह सकुचा कर रह जाती।

इस तरह रात ने जमुहाई ली और उसके अंगड़ाई लेते ही तारों की बाजार उठने लगी और चंदा जो अपनी हाट लिए रात भर चौकीदारी करता रहा था अब विश्राम करने के लिए अस्ताचल की ओर अग्रसर होने लगा। हवा रात की अपेक्षा इस पौ-फ़टने की बेला में इतनी ठण्डी हो गई थी कि बदन में छू जाती तो ऐसा लगता जैसे किसी ने तीर मार दिया है; जिससे त्वचा फट गई है।

प्रातः कीर्तन समाप्त हुआ। भीड़ हटने लगी और जन कोलाहल इतना तीव्र हो उठा कि सुनना कठिन हो गया। बलवन्ती माँ के साथ भीड़ को चीरती हुई अपने घर की ओर बढ़ी। इतने में उसके निकट आ गया नेवाजी और अनुरोध भरे स्वर में कहने लगा—'ऐसी क्या जल्दी है बलवन्ती ! भीड़ छट जाने दो, नाहक काकी को हैरान करोगी ! रुक जाओ, मैं भी चल रहा हूँ।'

बलवन्ती ने कुछ भी जवाब नहीं दिया और हरदेई कहने लगी—'भीड़ हटते-हटते बहुत देर लगेगी नेवाजी, अब चलने दो। रात भर ठण्ड में ठिठरी हूँ, घर जाकर आग तापूंगी।,

तब विवश नेवाजी दोनों माँ बेटी के साथ पथ पर चलने लगा।

अनवर गंज के चौराहे पर सबने संतोष की साँस ली, क्योंकि अब भीड़ के रेले पीछे छूट गये थे और मुक्त सड़क सामने थी।

प्राची का आकाश लालिमा से स्नान कर रक्तिम हो उठा था। तीनों राही पथ पर चले जा रहे थे। वलवन्ती के दाहिने कन्धे पर हरदेई का हाथ था और नेवाजी दोनों माँ-वेटी के साथ कदम बढ़ाये चला जा रहा था। तीनों में वार्ता चल रही थी, विषय था कीर्तन की प्रशंसा का।

नेवाज़ी कह रहा था—'काकी इस साल का कीर्तन पिछले सालों से बहुत अच्छा रहा। भीड़ का इतना आलम था कि कहीं भी तिल रखने को जगह नहीं थी।'

यह कहकर वह वलवन्ती की ओर उन्मुख हुआ और उसका मत जानने के लिए पूछ लिया—'क्यों वलवन्ती! तुम्हें कैसा लगा?'

वलवन्ती इस पर शर्मीली मुस्कान छोड़कर रह गई। वह धीरे-धीरे कहने लगी—'हाँ, अच्छा ही रहा। पार साल तो मैं यहां आई नहीं थी उसके पहले की कीर्तन मण्डली से अब की वार बहुत अच्छा इन्तिजाम था।'

वलवन्ती कह रही थी और नेवाजी सुन रहा था। लेकिन हरदेई इन सब बातों में आनन्द न लेकर जल्दी घर पहुंचने की सोच रही थी। वह बलवन्ती को बोलते सुनकर उसको मीठी डांट बताकर बोली—'अरी चल! मैं जड़ा रहीं हूँ और तूने पैरों में जैसे मेहँदी लगा ली है।'

इस पर बलवन्ती की गति में धीरे-धीरे वेग समाने लगा। नेवाजी उड़ती चिड़िया पहचानता था। वह समझ गया, हरदेई इस बात को पसन्द नहीं करती कि वलवन्ती किसी आदमी से बातें करे। वह उसको घर में इस प्रकार वन्द करके रखती है जैसे डिबिया में कोई बहुत बड़ी धरोहर रखी जाती है। तभी तो मुझसे बातें करते सुनकर उसने फौरन ही अपना रुख बदल दिया।

नेबाजी का अन्तर्मन उपर्युक्त बात को सोचकर बहुत क्रुद्ध हुआ, किन्तु प्रकट में दुनियादारी करता हुआ वह हँसकर हरदेई से कहने लगा—'मालूम होता है काकी, तुम्हारी हड्डियाँ बहुत जड़ा गई हैं अब दूर ही कितना है, आगे दलेल पुरवा चौराहा है, उसके बाद पेंच बाग, फिर चमन गंज। और कहो तो सवारी कर लूं!'

'भइया की बातें! चली चलूंगी, खाने को जुड़ता नहीं इक्के ताँगे के लिए पैसे कहां से आयेंगे। सवारी की कोई जरूरत नहीं, नेवाजी!'

हरदेइ के मुँह से यह सुनकर नेवाजी को अपनी बात कहने का अच्छा मौका मिल गया। वह मौखिक सहानुभूति से ओत-प्रोत वाणी में उससे कहने लगा— 'काकी! मन क्यों छोटा करती हो! दुनिया में सभी मुँह में चाँदी की चम्मच लेकर पैदा नहीं होते। अब तो खैर हम लोग आधी दूर आ गये हैं, वैसे मेरे रहते तुम्हें तकलीफ पहुंचे यह मेरे लिए बड़ी शर्म की बात है।'

नेवाजी की बातें सुनकर हरदेई भी लल्लो-चप्पो करने लगी, वह बोली—'हां भइया, तुम्हारा हम लोगों को बहुत सहारा है। मैं अन्धी हूं। और जब आदमियों को काम नहीं मिलता है तो घर में बैठे बैठे औरत को कौन काम देगा? तुम्हारी बड़ी मेहरबानी है जो बलवन्ती को चप्पलें सिलने को देते हो! क्या बताऊँ नेवाजी आज को अगर तुम्हारे काका जिन्दा होते तो बलवन्ती अब तक कुआँरी बैठी रहती! बस यह नाव पार लग जाये तो मैं उभर जाऊँ। तुम्हीं सब लोगों के भरोसे इस साल मैं पैर पूज कर ही रहूंगी, यह सोचती हूँ।'

अब नेवाजी का उत्साह जैसे ठंडा पड़ गया था। वह संक्षिप्त-सा जवाब देता हुआ बोला—'मेरी मेहरबानी क्या काकी! सब भगवान की दया है; हां व्याह तो इस साल कर ही डालो!

इस तरह धीरे-धीरे बातचीत का विषय फिर चलताऊ ढङ्ग पर आ गया। मंजिल पूरी हो आई थी, पहले बलवन्ती का घर पड़ता था।

घर आकर बलवन्ती ने जल्दी से मिट्टी की बरोसिया में कुछ चिफु-रियां डालकर आग प्रज्वलित की। फिर गृह कार्यों में संलग्न हो गई।

छत की मुंडेर पर बैठा कौआ कांव-कांव कर रहा था जिससे आंगन में फुदक रही गौरैयां बार-बार उड़ जाती थीं। बसन्ती धूप छज्जे से उतर कर पिंडोर से पुती दीवाल पर पड़ चांदी सी चमक रही थी। हरदेई सोच रही थी कि नेवाजी का मन कैसा है यह तो नहीं जानती; मगर जिन्दगी का तजुर्बा यह है कि फूस को आग से ज्यादा लगाव होता है। बलवन्ती आग है और नेवाजी फूस। हालांकि बलवन्ती अपने घर में बैठकर चप्पलें सीती है लेकिन फिर भी न जाने मेरा मन क्यों पच-कता रहता है। सबेरे जब वह काम लेने के लिए नेवाजी के घर जाती है और दिन ढले मजदूरी के पैसे लेने, तो मुझे न जाने क्यों उलझन सी हो जाती है। क्या करूं स्यानी लड़की है, मैं अन्धी हूं, कहीं खाली-ऊंचे पैर पड़ गया तो जाति-बिरादरी वाले तनिक भी मुलाहिजा नहीं करेंगे। आखिर कैसे ब्याह होगा बलवन्ती का! मुझे तो ऐसा लगता है, न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी। भगवान अगर लड़की दे तो गरीबी न दे। मैं सब तरह मारी गई। दुविधा में हूं, न तो बलवन्ती को नेवाजी के घर जाने से मना कर सकती हूं और न कुछ अपने आपही कर सकती हूं।'

हरदेई के दोनों हाथ बरोसिया की आग ताप रहे थे। चिड़ियों क कलरव कभी-कभी उसके कानों में गूंज उठता, जिससे एक क्षण के लि उसकी विचारधारा रुक जाती।

और बलवन्ती जल्दी से चौका-बर्तन से निवृत्ति पाकर माँ के पास जा धीरे-धीरे कहने लगी—'माँ, मैं अभी आई, नेवाजी के घर जा रही हूँ। चप्पलें ले आऊँ, दिन बहुत चढ़ आया है।'

हरदेई ने कुछ भी जवाब नहीं दिया। वह आगे हाथ बढ़ाकर बलवन्ती को टटोलने लगी। तब बेटी माँ के पास सरक आई और माँ उसकी धोती पकड़ कर बैठाती हुई स्नेह भरे स्वर में कहने लगी—'बैठ जाओ बलवन्ती, हाथ सेंक लो, अभी वर्तन धोये हैं। फिर चली जाना।'

लेकिन बलवन्ती नहीं बैठी। वह यह कहती हुई द्रुतवेग से बाहर चली गई कि अभी आई माँ, फिर देर हो जायेगी, तुम तो समझती नहीं हो।

इस पर हरदेई के मुँह से एक लम्बी सांस निकल गई और वह मन ही मन कहने लगी कि हाँ बेटी मैं क्या समझूंगी। अभी तूने दुनिया नहीं देखी है, इसीलिए ऐसा कह रही है।

रास्ते में बलवन्ती सोच रही थी कि नेवाजी कितना अच्छा आदमी है। किसी को काम मिले या न मिले, लेकिन मुझे बिना नागा काम जरूर देता है। बेचारा कितना सीधा है और कितना भला। जमालो अच्छे स्वभाव की स्त्री नहीं, तभी वह उसे पीटता है। मुझे बड़ा तरस आता है उस पर कि पैसे होते हुए भी उसे गृहस्थी का सुख नहीं है। कैसी है दुनिया की रीति कि एक न एक कमी आदमी के साथ बनी ही रहती है।

इस प्रकार मन ही मन नेवाजी की प्रशंसा करती हुई उसके प्रति समवेदना से भरी हुई बलवन्ती उसके घर पहुंच गई। वहाँ नेवाजी यद्यपि कारीगरों के बीच बैठा सबको काम वितरित कर रहा था, लेकिन उसका चपल मन अटका हुआ था बलवन्ती की ओर, कि ऐं आज काफी

देर हो गई और बलवन्ती अभी तक नहीं आई, हो सकता है घर के कामों में लगी हो, क्या करे बलवन्ती। बुढ़िया हरदेई उसके सिर पर ऐसे सवार रहती है जैसे घोड़े का सवार। तनिक भी तो अपनी लगाम ढीली नहीं करती है वह। उसी ने उलझा रखा होगा, तभी नहीं आई।

अभी नेवाजी यह सोच ही रहा था कि बलवन्ती आ गई। वह तनिक भी नहीं रुकी, चप्पलों की गड्डी लेकर जल्दी ही वहाँ से चली गई।

अब दिन का पहला प्रहर प्रयाण पर था और फीकी-फीकी धूप पथ पर बिछ रही थी। बलवन्ती चली जा रही थी यह सोचती हुई कि युग-युग जिये नेवाजी, ईश्वर उसको खूब दे, क्योंकि वह दुखियों का दर्द पहचानता है।

***

अपने अतीत का स्मरण प्रत्येक को आता है चाहे वह दुखद हो अथवा सुखद। हरदेई का अतीत स्वर्णिम तो न था, लेकिन था संतोषप्रद और शान्तिपूर्ण। उसका पति हरिदास अपनी पैंतालीस साल की अवस्था तक एक साधारण कारीगर ही रहा। उसकी प्रगति उन्नति का प्रतीक नहीं बन सकी तो अवनति की ओर भी नहीं गई। प्रौढ़ावस्था में पुत्री बलवन्ती ने जन्म लिया और अभी उसने यौवन की दहलीज पर पैर भी नहीं रख पाया था कि हरिदास अपने अरमान लिये दुनिया से चला गया।

मिट्टी का छोटा सा कच्चा घर जिसमें हरदेई रहती थी, वह उसके पति के पूर्वजों का था। एक छोटी सी कोठरी और उसके सामने छोटा सा आँगन इतनी कुछ औकात थी उस घर की। हरदेई उस घर में दुलहिन बनकर आई थी। उसकी इच्छा थी कि जिस घर में डोली पर सवार होकर आई हूं, मेरी अर्थी भी उसी घर से निकले। इस भाँति बुढ़िया को अपना वह घर बहुत प्यारा था। उसका पति थाथी के नाम पर बलवन्ती और पुरखों के हाड़ घर को छोड़ गया था।

पिता की मृत्यु के समय बलवन्ती दस वर्ष की थी और तैयारी यह थी कि उसी साल या अगले वर्ष उसका ब्याह जरूर होगा। किन्तु होन-हार की बात जिस घर में बारात आने वाली थी वहाँ मातम बरसने लगा। हरिदास को दमा का रोग था। पुरानी कहावत है कि दमा दम के साथ जाता है सो हरिदास के साथ भी यही हुआ। एक बार इसके ऐसा दौरा पड़ा कि फिर वह सिर नहीं उठा सका। ब्याह के लिए गहने बनवाये गये थे और कुछ नकदी भी संग्रहित थी। वह सब इसमें होम

के मृतक कार्यों में व्यय हो गया। बिरादरी लम्बी थी और कच्ची तथा पक्की दोनों रसोई सबको खिलानी ही थी। यही नहीं चांदी के दो-चार साधारण गहने जो बलवन्ती के लिए बनवाये गये थे वे भी उसी कार्य में समाप्त हो गये।

इसके बाद नियति का चक्र अपनी कीली पर तेजी के साथ घूमता रहा और हरदेई का भाग्य उल्टी करवटें बदलता रहा। पति की मृत्यु के बाद रोते-रोते उसकी आँखें सूज गई, लेकिन फिर भी दुख नहीं घटा, आंसू नहीं थमे। धीरे-धीरे यह गति हो गई कि उसके सिर में दर्द रहने लगा। पहले उसने खूब सहा यहाँ तक कि बलवन्ती तक को भी नहीं बताया लेकिन पीड़ा सीमा से बाहर हो गई तो फिर उसे डाक्टरों के पास दौड़ना पड़ा। इसमें घर की रही-सही विभूति भी समाप्त हो गई। रोग विजयी बना रहा। डाक्टरों ने कह दिया कि उसे सबल-बाई का रोग है और एक दिन हरदेई अन्धी हो गई।

बलवन्ती माँ के समान ही सुन्दर थी और उतनी ही सीधी भी। भाग्य ने उसके पाँव दलदल में फँसा दिये। जिससे शायद उसका निकलना कठिन होगया था। ग्यारह वर्ष की आयु में ही उसे यह चिन्ता हो गई कि माँ की आँखें जाती रही हैं। इसके अलावा उनका शरीर भी थक चला है। मुझे अपने पेट की चिन्ता से पहले माँ का ख्याल रखना है। अल्पवयस्का बलवन्ती के विचार इतने सुलझे हुये थे, मानों वह प्रौढ़ा हो। उसने पढ़ाई स्थगित कर दी। कक्षा चार तक हिन्दी का अध्ययन था उसका। वह देखती थी उस बिरादरी की औरतें, आदमी सभी ठेके पर चप्पलों का काम करते थे। उसने भी मुहल्ले में कई स्त्रियों से कहा कि उसे भी कुछ थोड़ा सा काम दिलवा दिया करें। इस तरह उसको काम मिलने लगा और उनकी जीविका चलने लगी।

इधर गत डेढ़-दो वर्षों से बलवन्ती का पड़ोसी नेवाजी नया-नया मालदार हुआ था। पैसे की ताजी गर्मी थी। तभी वह आदमी को आदमी

नहीं समझता था। अब उसने स्वयं कई कारीगर रख छोड़े थे। बारह जोड़ी चप्पलों के तले सिलने में वह बलवन्ती को भी डेढ़ रुपया देने लगा था। इस तरह रुपये-बारह आने का काम बलवन्ती दिन-रात जुटकर कर कर लेती थी। तब कहीं माँ-बेटी की उदर-पूर्ति हो पाती थी।

हरदेई अभी बरोसिया के ही पास बैठी थी कि बलवन्ती आँचल में चप्पलें भरे उसके पास आकर बैठ गई और प्रसन्नता के अतीव आवेग से आलोड़ित होकर जल्दी-जल्दी कहने लगी—अरे माँ! देखो तो आज नेवाजी ने मुझे दो दर्जन चप्पलें दी हैं। पूरे तीन रुपये की मजदूरी है। सचमुच नेवाजी बहुत अच्छा है माँ। मुझसे बेचारा जब भी होता है यही कहा करता है बलवन्ती सँकोच न करना किसी चीज़ की जरूरत हो तो बतलाना। मैं कोई ग़ैर नहीं हूँ।'

हरदेई मन ही मन किसी गहरे विचार में डूब गई और कुछ क्षण बाद बोली—'हाँ बेटी, कोई किसी को कुछ दे नहीं देता है, मगर दुनियादारी का यही दस्तूर है। नेवाजी हम लोगों का ख्याल रखता है, यही बहुत है।'

इस पर बलवन्ती अल्हड़ता वश धीरे से कह गई—'हाँ, माँ, यह बिल्कुल सही हैं। आज ही बेचारा पूछ रहा था कि बलवन्ती तुमने आज बहुत देर कर दी। कारीगरों को काम बहुत पहले बाँट चुका था। लेकिन तुहारे लिये चप्पलें, अलग रख दी हैं।'

हरदेई यह सुन कर कुछ चौंकी, किन्तु वह कुछ बोल नहीं पाई। बलवन्ती अपनी बात फिर कहने लगी—'सच कहती हूँ माँ अगर इतना काम रोज मिलता रहे तो हम लोगों को किसी किस्म की तकलीफ नहीं हो सकती।'

हरदेई फिर भी चुप रही। वह सोच रही थी कि नादान-बलवन्ती यह नहीं जानती कि दुनिया बिना मतलब किसी के काम नहीं आती है। अपने तो काम आते ही नहीं फिर परायों का क्या भरोसा। वह नेवाजी

को अच्छा आदमी समझती है और यह भूल जाती है कि उसने किस कदर बेइमानी की है, जिससे बड़ा आदमी बना है। एक साथ दो-दो पाप कमाये हैं उसने। पहले जिस पत्तल में खाया उसी में छेद किया फिर पराई जोरू भगा लाया। यह कहाँ का इन्साफ है।

दीवालों पर की धूप गाय के गोबर से लिपे हुए लाल आँगन में पूरी तरह से छा गई थी। हवा भी सधी हुई थी जिससे सामने खड़े नीम के पेड़ की पत्तियाँ धीरे-धीरे डोल रही थीं। सहसा उसकी डाल पर बैठी कोयल बोल उठी 'कुहू'-'कुहू' और बलवन्ती का ध्यान उस ओर आकृष्ट हो गया। वह मुदित होकर बोली—क्या सोच रही हो माँ ! तुम चुप क्यों बैठी हो ?'

जवाब में हरदेई एक लम्बी सांस लेकर बोली—'कुछ भी नहीं। सोचती हूं कि आज तुम कितनी खुश हो। माँ-बाप फूले नहीं समाते हैं जब उनकी औलाद सुखी होती है। लेकिन बालो मेरे सिर पर बहुत बड़ा बोझ है, कब तक घर में बैठाये रखूंगी तुम्हें। अब······।'

बलवन्ती शरमा गई और तिनककर कहने लगी—जाओ माँ, तुम तो और-और बातें करने लगीं।' यह कहकर वह उठ खड़ी हुई और जाते-जाते बोली—'अच्छा माँ, अब मैं रोटियाँ सेंकती हू, क्योंकि दोपहर होने जा रही है।'

बलवन्ती जाकर चूल्हा जलाने लगी और हरदेई वहाँ से उठ नित्य कर्म से निवृत होने चली गई। इस समय भी उसके मन में यही बात घूम रही थी कि बलवन्ती अब काफी सयानी हो गई है इस साल जैसे भी हो उसके पैर पूज देने हैं। उससे छोटी-छोटी लड़कियों के ब्याह हो गये हैं और वह अब तक कुआँरी बैठी है। भगवान मेरी नैय्या कब पार लगेगी, अब तुम्हारा ही सहारा है।

इस तरह हरदेई अपनी बिगड़ी बनाने के लिये मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी। चौके में बर्तन खनक रहे थे और बलवन्ती

धीरे-धीरे गुनगुना रही थी—'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई !' सूरज की किरणें अब बिल्कुल सीधी पड़ रही थीं, क्योंकि भगवान भास्कर का रथ आकाश के बीचों बीच में आगया था।

उस दिन सन्ध्या को बलवन्ती नेवाजी के घर नहीं जा पाई, क्योंकि वह पूरा काम नहीं कर पाई थी। इसके बाद प्रातः भी वह घर में बैठे-बैठे चप्पलें सीती रही और वहाँ नहीं पहुंच पाई। दूसरी सन्ध्या को जब वह उसके घर पहुंची तो वह कहीं शहर गया हुआ था। कारीगर काम समाप्त कर चले गये थे, घर में थी अकेली जमालो। वह बलवन्ती से न जाने क्यों कुछ चिढ़ी-चिढ़ी सी रहती थी। उसको सामने देखते ही रौब जताकर कहने लगी—'क्योंरी बलवन्ती, इसी तरह काम करेगी तो कैसे पूरा पड़ेगा। कल सबेरे चप्पलें ले गई थी और अब लेकर आई है। घर में चार-चार कारीगर काम करते हैं, न जाने वे (नेवाजी) तुमसे क्यों चप्पलें सिलवाते हैं लाओ रख दो यहाँ, और पैसे फिर आकर ले जाना, अभी वे बाजार गये हैं।'

बलवन्ती के मन को ठेस लगी। वह वहीं बैठ गई और धीरे-धीरे चप्पलें रखती हुई कहने लगी—'परसों रात में जागी थी, इसलिये कल दोपहर को सोगई, काम पूरा नहीं हो पाया। नाराज न हो भाभी, अब समय पर काम दे जाया करूँगी।'

इस समय साँझ का अन्धेरा रात के रूप में बदल रहा था और हँसिया की धार जैसा रुपहला दूज का चाँद नीले आकाश में मुखरित हो रहा था। गुलाबी जाड़ा लिये बसन्ती बयार डोल रही थी और जमालो आँगन में बैठी बलवन्ती से कह रही थी—'जाओ न, अब बैठी क्यों हो ? वे देर से लौटेंगे।'

बलवन्ती का मुख कुछ उतरा-उतरा सा प्रतीत हो रहा था। शायद वह जमालो से कुछ कहना चाहती थी, लेकिन कह नहीं पा रही थी। साहस करके वह धीरे-धीरे जमालो से बोली—'कुछ पैसों की जरूरत थी। अभी एक रुपया दे दो भाभी, बाकी बाद में ले जाऊँगी।

इस पर काली, कलूटी जमालो का मुँह पाँच कोने का बन गया। वह भौंहें तान और होंठ विचकाकर बोली—'मैं यह सब, कुछ नहीं जानती हूं, जो भी लेना-देना हो उनसे आकर लेना।'

बलवन्ती जमालो का मुँह देख कर रह गई। वह पुनः साहस कर सहमी वाणी में बोली—'फिर देर हो जायगी भाभी, आज अभी तक मेरे घर में चूल्हा नहीं जला है। बड़ी मेहरबानी होगी तुम्हारी अगर···।'

'अगर मगर मैं कुछ नहीं जानती हूं दुनिया भर का ठेका नहीं ले रखा है मैंने। जब ऐसा था तो घर से नाक पर चिराग रख कर क्यों चली थी जाओ मेरे पीछे न पड़ो।' यह कह कर जमालो वहाँ से उठ कर अन्दर अपनी कोठरी में चली गई।

बलवन्ती की आंखें भर आईं और उदास मन वह धीरे-धीरे घर के बाहर निकल आई।

सत्य का पेड़ जितना कड़ुवा होता है उतना ही उसका फल मीठा। सचाई दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति है। विश्व का कोई भी प्राणी इससे इन्कार नहीं कर सकता। चौखट के बाहर कदम रखते ही बलवन्ती की अचानक नेवाजी से भेंट हो गई। उसने उसको देखते ही हँस कर पूछ लिया—'अरे बलवन्ती! तुम आई नहीं। क्या काम अभी पूरा नहीं हुआ? आओ चलो, कैसे आई थीं?'

किंतु बलवन्ती अपने स्थान से तनिक भी टस से मस नहीं हुई। वह नीची दृष्टि कर पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदतेहुए बोली—'आज काम निपट पाया है। अभी-अभी भाभी को चप्पलें सौंप कर आ रही हूं। अब चलूंगी, देर हो रही है घर में माँ नाराज होगी।'

नेवाजी बलवन्ती की उदास मुद्रा देख मन ही मन भांप गया कि जमालो ने चप्पल रखवा लीं हैं और पैसे नहीं दिये हैं। वह सहानुभूति-घट उँड़ेलते हुए बोला—'तुमने पैसे लिए बलवन्ती या नहीं?'

बलवन्ती संकोच में गड़ती हुई शान्त स्वर में धीरे-धीरे कहने लगी-

'भाभी ने कहा था फिर आकर ले जाना। इस समय ज्यादा नहीं सिर्फ एक रुपया दे दो, मुझे बाकी बाद में ले लूंगी।'

अब नेवाजी खिलखिलाकर हंस पड़ा और हंसते-हंसते बोला—'ऐसी बात बलवन्ती! तुम्हारे लिए पैसों की कमी है क्या? लो।' कह कर उसने सदरी की जेब में हाथ डाला और तीन रुपये बलवन्ती के हाथ पर रख दिये।

और जब बलवन्ती चलने लगी तो नेवाजी दुनियादारी करना नहीं भूला। उसका लोलुप मन बलवन्ती की ओर आकृष्ट होकर रह गया गया और मुंह से ये शब्द निकल पड़े 'हां, और सुनो बलवन्ती, सवेरे तनिक जल्दी आ जाया करो। देरी हो जाती है, सारा काम कारीगर ही हड़प कर बैठते हैं।'

'हाँ, ऐसा ही करूंगी, परसों कुछ देर जरूर हो गयी थी। वैसे तो मैं खुद ही इस बात का ध्यान रखती हूं।'

बलवन्ती चली जा रही थी और उसका स्वर धीरे-धीरे मन्द होता जा रहा था।

नेवाजी ने जब पीछे की ओर मुँह फेरा तो चौखट पर जमालो खड़ी थी। उसने उससे कुछ भी नहीं कहा, सीधा अन्दर चला गया और ट्रंक खोलकर रुपये निकालने लगा, जब पुनः बाहर जाने का आयोजन कर वह आंगन में आया तो जमालो मुँह मटकाकर बोली—'अभी गये अभी आ गये और फिर जा रहे हो, क्या काम था? बलवन्ती से क्या बातें हो रही थीं?'

नेवाजी ने उपेक्षापूर्वक जमालो की ओर देखा और घृणा से मुँह विचकाकर कहने लगा—'जो जैसा होता है जमालो, वह दूसरों को भी वैसा ही समझता है। तुम्हारा पाई भर भी दोष नहीं हैं। तुम नीच हो इसलिए नीचता से बाज नहीं आतीं। खबरदार जो मुझ से फिर ऐसा सवाल किया। चमड़ा खरीदना था, जेब में रुपये कम थे, वे ही लेने आया

था और तुम हवा में गाँठें बांध रही हो। तनिक भी शर्म हया नहीं रह गई है तुमको। बात करती हो या लाठी सी मारती हो।'

बात समाप्त कर नेवाजी बाहर चला गया और जमालो बड़बड़ाती रही।

× × ×

अपना-घर छोड़कर मनुष्य दूसरे के घर को अपना आवास बनाता है तो उसका मान आखिरी सांसें गिनने लगता है और अपमान सामने आजाता है। जो अपने का न हुआ पराये का कैसे बन सकता है। जमाना तो यह है कि बाप बेटे का विश्वास नहीं करता। जमालो ने अपने पति के साथ विश्वासघात किया था। वह उसे त्याग कर और पूंजी लेकर नेवाजी के साथ नौ दो ग्यारह हो आई थी। अब स्थिति यह थी कि रुपया और जेवर अपने अधिकार में कर नेवाजी उसकी दुर्गति करता था। वह घर में मालकिन बनकर रहना चाहती थी। लेकिन नेवाजी ने उसे अलग ही अलग रखा था।

आज जमालो के मन में बहुत वेदना थी और वह पछता रही थी कि मैंने पेट कूट कर जो पीर पैदा की है, उसका फल तो मिलेगा ही और वह भोगना पड़ेगा। नेवाजी कितना बदल गया है, जैसे गिरगिट। क्या यह सही है कि आदमी का कलेजा पत्थर होता है? औरत पसीजती है और पिघल कर बह जाती है, लेकिन आदमी उसके लिए कठोर ही बना रहता है। अब मैं किसी भी दीन की नहीं रही। इस घर के अलावा दुनिया के सारे दरवाजे मेरे लिए बन्द हैं। कहां जाऊं? पहले यह नहीं सोचा था अब पछताने से क्या होता है! रूठा इन्सान मनाया जा सकता है, लेकिन रूठी तकदीर कभी नहीं मानती। वह जैसे कर्म होते हैं, वैसे फल दिये बिना कभी नहीं रहती। बोये कांटे हैं और फूलों का मन रखती हूं। यह मेरे नसीब में कहां! यह नीच बलवन्ती, ऐसा लगता है

कि कुछ न कुछ करके जरूर रहेगी, क्योंकि जितना मैं उसे दुतकारती हूं उतने ही वे उसके सामने दरिया दिल बन जाते हैं।

शीतल चांदनी जमालो को बिल्कुल नहीं भा रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि उसकी देह आग की जलती हुई एक भट्टी है, जिससे चिनगारियां निकल रही हैं और वह क्रोध तथा पश्चाताप से झुलसी जा रही है।

नेवाज़ी की आयु इस समय छब्बीस-सत्ताइस वर्ष की थी। और जमालो थी उससे दो-तीन साल बड़ी। जमालो नाम नेवाजी ने ही रखा था। इसके पहले उसका नाम शान्ती था। कर्नलगंज के चमरौधे में उसके पहले पति हंसराज का घर था। पीहर उसका जिला फ़र्रूखाबाद के एक गांव में था। वहां अकेली मां थी और वह भी अब चल बसी थी।

नेवाजी के परिवार में भी कोई नहीं था। उसके मां बाप बहुत छोटी उम्र में ही उसे छोड़कर चल बसे थे। जाति-बिरादरी के टुकड़े खाकर पला और सयाना हुआ फिर धीरे-धीरे इस योग्य बन गया कि मेहनत मजदूरी करके अपन निर्वाह करना लगा। इस प्रकार नेवाज़ी समय पाकर एक कुशल कारीगर बन गया। वह ठेके पर चप्पलें बनाने का काम करने लगा।

यद्यपि नेवाजी स्कूल नहीं गया था और न घर पर ही शिक्षक से शिक्षा पाई थी, लेकिन फिर भी वह लोगों के सम्पर्क से इतना सीख गया था कि चिट्ठी लिख लेता था। और हिन्दी का अखबार वगैरा टूटी-फूटी भाषा में पढ़ लेता था।

नेवाजी हृष्ट-पुष्ट था। दोहरी देह का सांवला रंग, मझला कद तथा नोकीली रोबदार मूछें। वह ऐसा लगता था कि कसरती पहलवान है और चमार न होकर कोई क्षत्रीय पुत्र है। मुखाकृति ऐसी थी कि वह सांवला होते हुए भी इतना सुन्दर प्रतीत होता था कि जिसका नाम नहीं।

भी, तो जमालो उस पर रीझ गई थी वह पति को छोड़कर उसके साथ भाग आई।

जमालो का पति हंसराज पैसे वाला तो जरूर था, लेकिन वह जन्म से रोगी था। एक दिन भी उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा जिससे न शरीर में ताकत थी और न चेहरे पर चमक। अधिकार और बल मनुष्य को शीघ्र ही अपने आधीन बना लेते हैं और फिर पैसा। उसका प्रलो-भन देकर तो आदमी से खून करवाया जा सकता है। इस के बाद नारी जब स्वयं अपने को किसी के हाथ सौंप दे तो फिर और क्या चाहिए। नेवाजी को ज़र मिला, जोरू मिली और यहीं से उसकी जमीन बन गई। हँसराज हाथ मल कर रह गया। वह जमालो और नेवाजी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका।

अब नेवाजी मालदार था। कई कारीगर उसके यहाँ काम करते थे। उसका हमेशा यह प्रयत्न रहता कि किसी प्रकार उसको जमालो से छुटकारा मिले और किसी सुन्दर स्त्री से ब्याह कर ले। यह तथ्य जमालो भी समझती थी तभी दोनों में एक मिनट भी नहीं पटती थी।

नेवाजी बलवन्ती के प्रति बहुत ही आकर्षित था और वह जानता था कि बलवन्ती गरीब है और गरीब आदमी का मुँह पैसे से बन्द किया जा सकता है। आज को यदि जमालो उसके साथ न होती तो वह हरदेई को चित्त-पट्ट समझाकर बलवन्ती को अपनी पत्नी बना लेता। और जब जमालो के सम्मुख यह होने की सम्भावना नहीं देख पड़ी तो वह बलवन्ती से खेलने के लिए दूसरा मार्ग अपना बैठा। उसकी हर मीठी बात मतलब भरी होती थी। उसके अन्दर कामुकता बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान थी। लेकिन भोली बलवन्ती ये दाँव-पेंच बिल्कुल नहीं जानती थी। वह नेवाजी को देवता-स्वरूप समझती थी और उसको अपने प्रति उदारता से ओत-प्रोत देख, यह अनुभव करने लगती कि नेवाजी हमदर्दी व

अच्छा पुतला है। दुखी और गरीब आदमियों पर रहम करने की उसकी आदत है। न जाने जमालो उससे क्यों नाराज रहती है ?

इधर बलवन्ती की यह धारणा थी और दूसरी ओर नेवाजी अपने षडयंत्र से पीछे नहीं था। काला साँप जब काटता है तो एक बार में ही मनुष्य का अन्त हो जाता है। लेकिन आस्तीन का सांप बहुत खतरनाक होता है, वह मौका पाकर कभी भी डस सकता है। नेवाजी आस्तीन का सांप था। उसकी नीति ढुलमुल थी और वह अवसरवादी व्यक्ति था। ऐसे लोग वाणी के प्रिय, मौखिक सहानुभूति प्रकट करने वाले और चाटुकार होते हैं। अपना काम बनाने के लिए वे दूसरे का बड़े से बड़ा अहित कर बैठते हैं।

जिस प्रकार नेवाजी ने जमालो का जीवन नष्ट कर दिया था। उसी प्रकार वह बलवन्ती को पथ भ्रष्ट करना चाहता था। अन्तर केवल इतना था कि जमालो के पास दौलत थी और बलवन्ती के पास रूप। दुनिया दौलत की भूखी है और रूप की प्यासी है। यही स्थिति नेवाजी की भी थी, क्योंकि वह चरित्र हीन था।

हरदेई बलवन्ती को स्पष्ट नहीं कह पाती; लेकिन वह मन ही मन अहर्निश सशंकित बनी रहती थी कि कहीं नेवाजी की क्रूर दृष्टि मेरी फूल जैसी बलवन्ती पर न पड़ जाये, जो जमालो की तरह उसकी भी जिन्दगी बरबाद हो जाये।

इस तरह हरदेई कुछ और सोचती थी, जमालो की विचार धारा कुछ और थी और नेवाजी नित्य नये सपने देखा करता था। ऐसे ही सरल बलवन्ती सभी ओर से अनभिज्ञ थी वह नहीं जानती थी कि पाप किसे कहते हैं और उसकी परिभाषा क्या है ?

***

ऋतु-परिवर्तन में मनुष्य के स्वास्थ्य में अवश्य कुछ न कुछ गड़बड़ हो जाती है मौसम का प्रभाव जिस प्रकार वनस्पति पर पड़ता है वैसे ही मानव, पशु और पक्षियों पर भी। इससे कोई भी अछूता नहीं बचता। जाड़ा साँसें तोड़ रहा था और फागुन का उत्तरार्द्ध गर्मी का निमन्त्रण लेकर आ पहुंचा था। कभी मौसम बड़ा अच्छा रहता बिल्कुल सर्दी नहीं लगती और जब लोग जाड़े की ओर से असावधान हो जाते तो अनायास ही ठण्डी पूर्वा बहने लगती और कच्चे-पक्के दिनों में लोग सर्दी खा जाते। बलवन्ती के भी साथ यही दुर्घटना हुई।

एक दिन बलवन्ती को जुकाम हुआ। दूसरे दिन काली मिर्च और तुलसीदल की चाय पीने से उसमें खुश्की आगई, सिर दर्द होने लगा और सूखी खाँसी आने लगी। तत्पश्चात् ज्वर ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया।

हरदेई बहुत परेशान हुई। वह दिन-दिन भर पुत्री के पास बैठी रहती। पीड़ा होने पर उसका सिर सहलाने लगती और किसी पड़ोसी का सहारा ले, वैद्य के यहाँ से उसके लिए दवा ले आती।

तीन-चार दिन हो गये और बलवन्ती नेवाजी के घर नहीं पहुंची तो नेवाजी को चिन्ता हुई कि क्या कारण है आखिर बलवन्ती क्यों नहीं आ रही है? उसके मन में शकाएँ घर बनाने लगीं कि कहीं जमालो ने उससे कोई कटु बात तो नहीं कह दी है जिससे वह घर में बैठ रही। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह कहीं चली गई हो। लेकिन जायेगी कहाँ? कोई भी तो उन माँ-बेटी का अपना नहीं है। समझ में नहीं आता कि ऐसी क्या बात हो गई जो वह दिखाई नहीं दी?

नेवाजी जमालो से बलवन्ती के विषय में पूछना चाहता था, लेकिन इस भय से चुप रहता कि अकारण ही घर में हाय-हाय होने लगेगी। नंगे आदमी से दुनिया डरती है। वह एक दिन बलवन्ती के घर जा पहुंचा।दृ उस समय वहाँ का श्य यह था—

सवेरा धरती पर पूर्ण रूप से उतर आया था। बलवन्ती जमीन पर बिछी मैली, पुरानी और फटी कथरी पर कई जगह नुची-खुची रजाई ओढ़े लेटी थी। हरदेई उसके पास बैठी थी। वह उसके सिर पर हाथ फेरती कह रही थी—'बालो, आज तो एक भी पैसा नहीं है, दवाई कहाँ से लाऊँ! अगर चल सको तो तुम्हें खैराती अस्पताल लिवा चलूँ?'

बलवन्ती उदास होकर कहने लगी—'दवा की अब क्या जरूरत है माँ, अब मैं अच्छी हूँ, तुम्हारी दुआ से दवा महँगी नहीं है। भगवान से दुआ करो वही मेरी दवा है। तुमसे कितना कहा कि किसी बच्चे के साथ नेवाजी के घर चली जाओ, चप्पलें ले आओ। मैं सीलूँगी, काम करूँगी तो रोग अपने आप भाग जायेगा। भला कहीं चोर के पैर होते हैं। जाओ, मेरी अच्छी माँ, चप्पलें ले आओ।'

हरदेई की आँखों से आँसू आ गये। वह आत्म-विडम्बना से पीड़ित होकर गीले स्वर में बोली—'मैं जानती हूं बालो, कि तू दुख को पीना खूब जानती है। लेकिन बच्ची काया राखे धर्म है। जब शरीर से ही मोह नहीं करोगी तो वह तुम्हारा साथ नहीं देगा। मैं नहीं जाऊँगी नेवाजी के यहाँ। चार-पाँच दिन से बुखार में पड़ी हो, अन्न का एक दाना पेट में नहीं पहुंचा। ऐसी हालत में तुम अपना काम करोगी? मैं बहुत दुखी हूँ बालो। आंखों के न होने से, मैं भी तुम्हारे सिर का बोझ बनी बैठी हूं। मैं जाती हूं पड़ोसिन भगवती के पास, दो रुपये उधार ले आऊँगी। दो-तीन दिन तक काम चलेगा तब तक तुम अच्छी हो जाओगी। यह कहकर हरदेई खड़ी हो गई और बाहर जाने लगी।'

तब बलवन्ती ने झिटक कर रिजाई एक ओर फेंक दी और उठकर

खड़ी होती हुई माँ को रोक कर बोली—'क्या तमाशा करती हो माँ, मुझे कर्जा नहीं चाहिए। मैं मेहनत करके जीना चाहती हूं खुशामद करना और गिड़गिड़ाना, यह मन को छोटा करता है। मैं जाती हूं नेवाजी के यहाँ, अभी चप्पलें लेकर आती हूं।'

इस पर हरदेई रोने लगी और उत्तेजित बलवन्ती को पकड़कर लिटाने का विफल प्रयास करने लगी।

नेवाजी बाहर की देहरी पर खड़ा यह सब दृश्य देख रहा था। उसने अपनी पौबाहर देखी तो माँ—बेटी के बीच जा खड़ा हुआ, दुनियादारी का प्रदर्शन करता हुआ बोला—'क्या बात है काकी। तुम रो क्यों रही हो और बलवन्ती तुम कई दिन से चप्पलें लेने नहीं आई?'

बलवन्ती की ओर देखते ही नेवाजी उसका उतरा हुआ मुँह देखकर समझ गया कि यह ज्वर-ग्रस्त है। वह चौंककर पूछने लगा—'अरे बलवन्ती! तुम तो बीमार हो। कब से पड़ी हो। और मुझे खबर भी नहीं दी।'

अब सकुचाती हुई बलवन्ती बिस्तर पर बैठ गई और सामने पड़े मोढ़े की ओर इंगित करती हुई सम्मान भरे हुए स्वर में बोली—'बैठो नेवाजी भाई, इधर दो तीन दिन से बुखार में पड़ी रही इसलिए नहीं आ पाई। आज माँ को भेज रही थी तब तक तुम तुम्हीं आगये।

नेवाजी मोढ़े पर बैठ गया और हरदेई आंसू पोंछती हुई उससे कहने लगी—'देखो भइया इस लड़की की जिद तो देखो। बुखार चढ़ा है और यह काम करने को कहती है।'

नेवाजी को अवसर मिल गया। वह जेब से दो रुपये का नोट निकाल कर हरदेई को देता हुआ बोला—'लो काकी, तब तक काम चलाओ और बलवन्ती को थकने दो। जब शरीर ही नहीं चंगा है तो काम कैसे होगा?'

हरदेई असमंजस में पड़ गई। नोट ले या न ले, यह वह तय नहीं

कर पा रही थी। बहुत कुछ उधेड़ बुन के बाद उसके मुँह से धीरे-धीरे यह निकला—'नोट रख लो नेवाजी जब जरूरत होगी तो माँग लूँगी। अभी ...।'

नेवाजी हाथ आया मौका खोना नहीं चाहता था। वह बीच ही में बोल उठा—'संकोच क्यों करती हो काकी। शायद तुम मुझे गैर समझती हो रुपये रख लो, नहीं तो मुझे दुख होगा।'

हरदेई चुप रही और बलवन्ती बोल उठी—'रख लो न माँ। मैं मजदूरी में कटवा दूँगी।'

बलवन्ती के मुँह से इतना सुनते ही नेवाजी ने उसकी बात पकड़ ली और हरदेई से कहने लगा—'हाँ, हाँ काकी, हरज क्या है? बलवन्ती ठीक कहती है।'

अब हरदेई विवश हो गई। उसने नोट गुड़ी-मुड़ी करके अन्टी में खोंस लिया और फिर नेवाजी से बातें करने लगी।

देर तक नेवाजी वहाँ बैठा रहा और उसने बहुत जोर दिया कि जाकर बलवन्ती के लिए दवा ले आये। लेकिन बलवन्ती अपनी जिद पर अड़ी रही। तब मगन मन वह उठ कर चला गया।

नेवाजी के प्रति बलवन्ती के मुँह से निकल गया—'देखा माँ! नेवाजी कितना अच्छा आदमी है।'

इस पर हरदेई चिन्तित होकर बोली—'तुम नहीं जानती बोलो कि नेवाजी रुपये क्यों दे गया है?'

'क्यों दे गया है माँ?' बलवन्ती एकदम चौंक पड़ी।

हरदेई धीरे-धीरे कहने लगी—'दुनिया में जवान लड़की बहुत धरोहर होती है और उस धरोधर की ओर क्या जवान, क्या बूढ़े, सभी की आंखें लगी रहती हैं। जिस तरह शरीर को कमजोर पाकर रोग उस पर अपना कब्जा जमा लेता है वैसे ही आदमियों की मजबूरी से आदमी ही नाजायज फायदा उठाता रहता है। तुम कहती हो कि नेवाजी

बहुत अच्छा आदमी है और मैं कहती हूं कि वह मुँह का मीठा है और मन का मैला है। देखती नहीं हो, जमालो की कैसी छीछालेदर करता है। एक जमाना था; जब अपना उल्लू सीधा करने के लिए यही नेवाजी उसके तलुए चाटता था। दूसरे की इज्जत से खेलना इसको खूब आता है। समय बहुत खराब है; फूंक-फूंक कर कदम रखना बच्ची, क्योंकि तुमने दुनिया अभी देखी नहीं है।'

बलवन्ती माँ का मुँह देखकर रह गई। वह कुछ नहीं बोली। कहाँ तो बात-बात पर माँ से तर्क करती थी और कहाँ एकदम चुप्पी साध कर रह गई। माँ की बातों का प्रभाव उस पर ऐसा पड़ा कि वह अनुभव करने लगी कि हाँ नेवाजी में कुछ कमियाँ जरूर हैं।'

हरदेई फिर कहने लगी—'बालो। शायद तुमको मेरी बातें अच्छी नहीं लगीं तभी तुम कुछ नहीं बोलीं। लेकिन बेटी, मैं फिर कहती हूं कि मुझे कर्जा ले लेना पसन्द है, यह खैरात तो बहुत महँगी पड़ेगी अच्छी हो जाओ, रुपये मजदूरी में कटवा देना, बस यही हो सकता है।'

'ऐसा ही होगा माँ।' कह कर बलवन्ती लेट गई और हरदेई हाथ से दीवार टटोलती हुई धीरे-धीरे बाहर निकल गई।

× × ×

बलवन्ती अकेले में सोचने लगी, माँ ठीक कहती है। कोई किसी को यों ही कुछ नहीं दे देता है। हो सकता है मेरे लिये नेवाजी के मन में पाप हो, तभी वह अच्छा व्यवहार करता है, हँसकर बोलता है और सब तरह खुश रखना चाहता है। क्या दुनिया में सब जगह यही है मुझे किसी की दया नहीं चाहिए। मेहनत करके पेट भरने में शान और दूसरे की मेहरबानी पर जीने को धिक्कार है। मजाल पड़ी नेवाजी मुझसे आधी बात कह जाय। अगर उसके मन में पाप समार

है तो मैं उसका मुँह नोंच लूंगी। गरीब हो चाहे अमीर, इज्जत सबकी बराबर है। माँ का इशारा मैं समझ गई, बस इतना ही काफी है।

दिन चढ़ रहा था और ज्वर की गर्मी के कारण बलवन्ती का गला सूख रहा था। साहस करके वह उठी और निकट रखा लोटा उठा कर पानी पीने लगी।

हरदेई की आँखों की ज्योति तो विहीन हो चुकी थी, लेकिन उसके अन्तर्चक्षु पूरी तरह से खुले हुये थे। उसे बलवन्ती पर अभिमान था कि वह बहुत ही सच्चरित्र और सीधी लड़की है। वह अक्सर सोचा करती कि यह मैंने बहुत अच्छा किया कि उसको नेवाजी की ओर से आगाह कर दिया। समझदार को इशारा ही काफी होता है। इसके अलावा बलवन्ती के मन से मैंने यह बात भी निकाल दी है कि नेवाजी बहुत अच्छा आदमी है। क्या करूं, मेरा वश चले तो बालो को उसके घर भेजूं ही नहीं। मगर मजबूरी के आगे झुकना पड़ता ही है, कोई घर बैठे खाने को नहीं दे जायेगा। सोचती हूं कि और तो कोई दूसरा सहारा है नहीं। घर ही क्यों न बेच डालूं और अपनी बालो के हाथ पीले कर दूं। इधर कुछ दिनों से मेरा मन न जाने कैसा कैसा हो रहा है। लगता है जैसे कुछ खो गया है, मैं ढूंढ़ रही हूं और वह मिल नहीं रहा है। कहीं कोई आफत पहाड़ बन कर सिर पर न आ गिरे जो मैं जिन्दगी से भी गई बीती हो जाऊँ!

ऐसे ही हरदेई कभी कभी ऐसा भी सोचने लगती कि बालो से कहूं किसी दूसरे ठेकेदार के यहाँ से चप्पलें ले आया करे। मुझे नेवाजी के लक्षण अच्छे नहीं लगते हैं। अगर कोई दूसरा जरिया रोटियों का बन जाय। तो नेवाजी की ओर से सहज ही मुँह फेरा जा सकता है। आठ दस दिन बलवन्ती बीमार रही इस बीच थोड़े-थोड़े करके नेवाजी दस रुपये दे चुका है, कहीं कोई विस्फोट तो नहीं होने वाला है। खाने भर

को बलवन्ती मुश्किल से कमा पाती है फ़िर ये रुपये कैसे लौटाये जायेंगे। खैर कुछ भी हो, मैं एक वक़्त खाऊँगी, भूखी रहूंगी लेकिन उसकी एक-एक पाई भर दूंगी।

और यही बात हरदेई ने बलवन्ती को भी जँचा दी थी। बलवन्ती अब ज्वर मुक्त हो चुकी थी। यद्यपि अभी बदन में कमजोरी अधिक थी, लेकिन फिर भी वह दिन भर काम में सिर गड़ाये रहती थी। माँ मना करती और मीठा-मीठा गुस्सा भी करती, किन्तु वह नहीं मानती।

इस भांति घर की गाड़ी आगे बढ़ रही थी और एक दिन हरदेई ने नेवाजी को बलवन्ती द्वारा बुलवाया और उसको दस रुपये लौटाती हुई बोली—'लो नेवाजी, तुम बेकार की जिद करते हो मैंने बलवन्ती से कहा था कि थोड़े-थोड़े पैसे मजदूरी से कटवाते जाना, लेकिन यह तुमने मंजूर नहीं किया। रुपये ले लो, जब जरूरत होगी तो फिर माँग लूंगी।'

नेवाजी चौंक कर रह गया। उसने यह बात स्वप्न में भी नहीं सोची थी कि हरदेई रुपये लौटाने की स्थिति में आ सकेगी। वह चौंकता हुआ कहने लगा—'अरे काकी! रुपये वापस क्यों करती हो? क्या मैंने इसीलिये दिये थे? न जाने तुम मुझे दूसरा क्यों समझती हो? सब तुम्हारी ही माया है, तुम्हारे ही आशीर्वाद से मैं चार पैसे कमा रहा हूं। मुझे शर्मिन्दा न करो काकी, रुपये ले लो।'

होली जल गई थी इसलिए मौसम में उष्णता आ गई थी। चैती बयार अपने में गर्द का समावेश लिए मन्द-मन्द झरोकों में बह रही थी। सूरज ढलने जा रहा था। धूप मुंडेरों पर से कूंच कर गयी थी। हरदेई आंगन में बैठी थी उसके पास बैठा था नेवाजी और एक कोने में आसीन बलवन्ती चप्पल सी रही थी। नेवाजी की बात सुनकर हरदेई कहने लगी—'नहीं नेवाजी, मैं जानती हूं कि तुम मेरा बड़प्पन रखते हो। मगर भइया रुपये ले लो, नहीं तो मुझे यह बात खलती जरूर रहेगी। ईश्वर करे दूध से नहाओ, पूतों से फलो, तुम्हारा घर-बार खूब बढ़े।

मैं बहुत खुशी हूं तुमसे, ये रुपये ले लो नेवाजी, जब हैं तो दे रही हूं वैसे मुझे यकीन था कि तुम मांगने नहीं आओगे।'

नेवाजी ने बहुत तर्क किये, लेकिन हरदेई नहीं मानी और उसको रुपये लेने ही पड़े।

× × ×

उस दिन से नेवाजी का मन हरदेई की ओर से बहुत खट्टा हो गया। वह एक तो बलवन्ती के घर जाता ही नहीं था और अगर गया तो बुढ़िया से हँसकर तो बोलता था, लेकिन मन ही मन कुढ़ा रहता। पक्षी को फँसाने के लिए उसने जो जाल बिछाया था और उसपर कुछ अनमोल दाने डाले थे वह जाल टूट गया और दाने बिखर कर धूल में मिल गये

यह सब था; किन्तु नेवाजी का मन बलवन्ती की ओर से तनिक भी नहीं हटा था। वह उससे मीठी-मीठी बातें करता और प्रयत्न यह रखता कि वह उसके प्रति असन्तुष्ट न रहे। मगर बलवन्ती सजग थी, सतर्क थी और थी संयत अपने में, वह नेवाजी को इतना मौका नहीं देती कि उससे घंटों बातें करता रहे।

एक दिन बलवन्ती जब संध्या समय नेवाजी के घर चप्पलें देने गई तो नेवाजी के पास रेजगारी नहीं थी। उसकी मजदूरी होती थी बीस आने, नेवाजी ने रुपये-रुपये के दो नोट उसके हाथ पर रख दिये और हँसकर कहने लगा—'ले जाओ बलवन्ती फुटकर पैसे नहीं हैं।'

'तो मैं अभी रुपया भुनाये लाती हूं।' कहकर बलवन्ती जाने को उद्यत हुई।

तब नेवाजी उठकर खड़ा हो गया और उसको अपने पास बुला कहने लगा—'अरे पैसे कहीं भागे जाते हैं क्या? और मैंने तो तुम को खुश्की से दिये हैं। ले जाओ संकोच क्यों करती हो?'

'यह बात नहीं, देर ही कितनी लगती है, मैं अभी आती हूं।' कहकर बलवन्ती उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही चली गई और नेवाजी उसकी ओर देखता रह गया।

थोड़ी देर बाद बलवन्ती आई और बाकी पैसे देकर लौट गई। अब नेवाजी के बाजार जाने का समय हो रहा था। कारीगर चले गए थे। चप्पलें झल्लियों में भरी रखी थीं। झल्ली वाले बाहर खड़े नेवाजी की राह देख रहे थे कि सहसा जमालो विष वमन करने लगी। वह पति के पास आ गुस्से से होठ चबाती हुई बोली—'करो क्या बस नहीं चलता है नहीं तो तुम बलवन्ती के लिए आसमान के तारे भी तोड़ लाओ। वह दूर-दूर भागती है और तुम हाँ-जी, हाँ-जी करते हो। मैं सब समझती हूं तुम......।'

'क्या समझती हो तुम ? मैं कहता हूँ कि मेरे पीछे मत पड़ा करो। वरना मैं बहुत बुरा पेश आऊँगा।' कहकर नेवाजी उसके सामने तनकर खड़ा हो गया। और लाल-लाल आँखें निकाल कर आगे बोला—'जैसी तू हरजाई है वैसा ही बलवन्ती को समझती है। जब अपने बिहाता आदमी की न हुई तो तुमसे मैं वफा की उम्मीद क्या रखूँ ? निगोड़ी कहीं की, जब तब पीछे पड़ी रहती है।'

'क्या कहा, मैं निगोड़ी। निगोड़ा तू और तेरा बाप ! मुझसे लपलप खूब करना आता है और उस मुँह झौंसी बलवन्ती के सामने खींसें निपोरते हो। शर्म नहीं आती डूब मरो चुल्लू भर पानी में, चाण्डाल कहीं का, जब देखो मेरी बेइज्जती किया करता है। सो मैं अब गम खाने की नहीं।'

जमालो के मुँह से यह सुनते ही नेवाजी उसपर बाज-सा टूट पड़ा। बालों का झोंटा पकड़कर उसको आंगन में पटक दिया। फिर लातें और घूंसे मारते हुए बोला—'मुँह लगाई डोमनी गावे ताल-बेताल चल निकल मेरे घर से। तुझ जैसी तो मारी-मारी फिरती हैं।'

जमालो पिटकर भी चुप नहीं हुई । वह दोनों हाथ नचा जोर-जोर से रोती हुई चिल्लाकर कहने लगी—'तू क्या निकालेगा मुझे घर से, मैं खुद ही चली जाऊंगी । ला, दे रकम अभी जाती हूं। हराम-जादा मेरे गहने तक बेचकर अपने कब्जे में कर लिये और अब घर से निकालता है।'

'ले रकम ।' कहने के साथ नेवाजी का एक भरपूर हाथ जमालो के मुंह पर पड़ा । उसके नथूनों से टप-टप खून चूने लगा । वह सिर पकड़ कर रह गई और नेवाजी क्रोध में भरा हुआ बाहर चला गया । झल्ली वाले अपनी खाली झल्लियां लेकर वापस चले गये और नेवाजी उस दिन बाजार नहीं गया ।

नेवाजी घर से निकलकर चलता ही गया। कुछ भी निश्चय नहीं था कि वह कहाँ जा रहा है? क्रोधावेश से उसका मस्तिष्क क्षत-विक्षत हुआ जा रहा था और देह से चिनगारियाँ सी निकल रहीं थी वह सीधा गोपाल टाकिज की ओर जा रहा था। शीश महल सिनेमा के सामने एक क्षण वह रुका। मन में आया कि सिनेमा देखले, चित्त को राहत मिल जाएगी। लेकिन अब सात बज रहे थे, खेल शुरू हो चुका था। वह और आगे बढ़ा और बढ़ता ही गया। राम बाग के एक छोटे से पार्क में जाकर उसने सांस ली और हरी-हरी दूब पर जूते उतारकर लेट गया।

पार्क में अच्छी खासी चहल पहल थी। गर्मी का आरम्भ था और मौसम भी इस सम सुहावना था। चैत का शुक्ल पक्ष चल रहा था। बेला और गुलाब आदि फूलों पर से बहती हुई सुरभित हवा मन को आनन्दित कर रही थी। शिशु समुदाय दौड़ दौड़ कर खेल रहा था। कुछ वयस्क लौह बैंचों पर और कुछ दूब पर बैठे थे, कोई-कोई टहल रहा था। नेवाजी की दृष्टि नीले शून्य पर टिकी थी जिसमें ज्योति-पिण्ड चमक रहे थे और आकाश गंगा दूध की धार की भांति स्पष्ट बहती हुई दृष्टि गोचर हो रही थी। हंसता चाँद इस प्रतीक्षा में था कि कब आकाश गंगा में इन्द्र का ऐरावत उतरे और मैं उसका स्वागत करूँ?

नेवाजी का क्रोध धीरे-धीरे शांत हो रहा था और वह सोच रहा था कि व्यर्थ ही मैंने जमालो पर हाथ उठाया। आदमी का स्वभाव कभी नहीं बदलता है। जमालो बड़बड़ाने के अलावा

और कर ही क्या सकती है ? उसके हाथ-पैर तो उसी दिन कट गये थे जब मैंने झूठा और मीठा लालच देकर घर में लाते ही हंसराज की भवन की हुई पूंजी अपने कब्जे में कर ली थी। वह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती है।

इसके बाद नेवाजी का ध्यान बलवन्ती की ओर गया। तब उसे बहुत बड़ी खीझ हुई कि बलवन्ती के लिए मैंने जितने भी पाँसे फेंके वे सब उल्टे पड़े। क्या वह मेरी नहीं बन सकेगी कभी ? कुछ भी हो मैं उसको पाकर ही रहूंगा! उधर अन्धी बुढ़िया बीच में बाधा है और इधर यह दुष्टा जमालो। बलवन्ती बहुत सीधी है, एकदम फूल। मुझसे जब बोलती है तो चाँदी सी उसकी बत्तीसी निखर कर रह जाती है। उस समय मैं यह सोचने लगता हूं कि भाग्य से मुझे भी इतनी सुन्दर घरवाली मिली होती तो कितना अच्छा होता। लेकिन तकदीर की लकीरें मेटी नहीं जा सकती हैं।

लेटे-लेटे नेवाजी ने करवट बदली, एक जमुहाई ली और अंगड़ाई लेकर बैठ गया। वह देर तक बैठा रहा। रात भीगती रही, तारे चमकते रहे और एकाएक सड़क पर जन कोलाहल में ऐसी वृद्धि हो गई मानो बाजार लग रहा हो, जिसमें कुंजड़े अपने-अपने सौदों के भाव बोल रहे हों। वह बीड़ी सुलगाकर धुंआ नथूनों से निकालता हुआ सोचने लगा कि शायद सिनेमा छूटा है। इसके माने नौं बज गये। चलूं घर तो जाना ही पड़ेगा। कितनी नीच औरत है यह जमालो आज ऐसी ठांय-ठांय लगा दी कि सारे का सारा माल घर में रखा रह गया। अभी जाऊंगा तो वह और उबलेगी पता नहीं कौनसे पाप किये थे मैंने जो ऐसी—संगति मिली है।

इस तरह वह उठा और उजली चांदनी में अपनी छाया निहारता हुआ घर की ओर बढ़ने लगा।

× ×

घर के किवाड़े खुले पड़े थे। जमालो आंगन में ही पड़े- पड़े सो गई थी। छीकें में रखा हुआ दूध बिल्ली पी रही थी। सारा घर सांय-सांय कर रहा था लगता था यह मौत का सन्नाटा है। नेवाजी के आते ही बिल्ली भाग गई। वह जमालो के निकट आया। खून से उसकी धोती का आंचल भीगकर लाल हुआ था जो अब सूखने पर काला-काला मालूम होता था। उनकी नाक और मुँह दोनों रक्त-रंजित थे। बहकर सूख गये आँसुओं के चिन्ह आगन की बत्ती के पीले प्रकाश में स्पष्ट दिख रहे थे। नेवाजी का मन अन्तर्वेदना से कचोट उठा। औरत आदमी के आधीन है। वह चाहे तो उसे सिर आंखों पर बिठा ले और चाहे तो पैर की जूती बनाले। जमालो की जबान चलती है और मेरा हाथ चलता है। कितना दुख हुआ होगा बेचारी को। क्या मैं वाकई उसके साथ ज्यादती कर रहा हूं ? कितनी बार समझाया कि मेरे मुंह न लगा करो, लेकिन खुली जबान की उसकी दुश्मन है और तभी उसकी यह गति होती होती है।

आखिर नेवाजी का मन नहीं माना। उसने धीरे से कन्धा हिलाकर जमालो को जगाया और आत्मीयता पूर्ण वाणी में बोला—'उठो जमालो। अरे तुम तो जमीन में ही सो गई। उठो, मुंह धो डालो। दूध तो बिल्ली पी गई है मैं अभी गरम-गरम लेकर आता हूं। बहुत खून निकल गया है तुम्हारी नाक से। गुस्सा हराम होता है और तुम उस पर सवार हो जाती हो तभी मैं भी बेकाबू हो जाता हूं।' यह कहने के साथ वह दूध लेने बाहर चला गया और जमालो अपनी पीड़ा, अपना दुख और अपनी उलझन सभी कुछ भूल गई। वह विजय गर्व से मन ही मन मुस्करा उठी। 'नेवाजी मुझे कितना प्यार करता है। गुस्से में तो फिर बाप अपने बेटे को भी रुई की तरह धुन डालता है लेकिन वह बाद में पछताता जरूर है। मैं दूर क्यों जाऊं, राह के—रोड़े को ही क्यों न हटा दूं जो फिर यह नौबत कभी आये ही नहीं।'

जमालो नल के पास बैठी मुँह धो रही थी और सोचती जाती थी कि अगर बलवन्ती मेरे घर न आये तो वे क्यों उससे हंसकर बोलें और मुझे डाह हो। इस पर सोचना पड़ेगा और उसका आना बन्द करना ही होगा।

इस तरह जमालो सोच रही थी और आकाश की नीली चुनरी पर तारे हँस रहे थे, चांद लजा रहा था।

× × ×

बुरा हो या भला मनुष्य जिस काम को करने की सोच लेता है फिर वह उसके लिए कुछ उठा नहीं रखता। मंगल कार्यों में विघ्न आते हैं, विलम्ब लगता है, लेकिन अनिष्ट की ओर अग्रसर होते ही तत्काल विस्फोट हो जाता है। विध्वंस एक पल में हो जाता है और निर्माण में युग बीत जाते हैं। जमालो को अधिक सोचना नहीं पड़ा। सीधी सी युक्ति थी, जिसको लेकर वह हरदेई के पास पहुंच गई।

आज बलवन्ती ने भुरिया मछली का साग और गेहूं की मोटी-मोटी रोटियाँ बनाई थीं। दोनों माँ-बेटी बैठी भोजन कर रही थीं। उनके चेहरे पर उल्लास दौड़ रहा था। बातचीत का विषय था, पड़ोसी बुलाकी भगत का। जिसने पचास साल की उम्र में एक बीस वर्ष की विधवा चमारिन को अपनी चूड़ियाँ पहनाई थीं और वह चमारिन गोमती पिछली रात घर की सारी जमा-पूंजी लेकर अपने किसी यार के साथ चम्पत हो गई।

दोपहर ढल गई थी और गर्द भरी हवा आँगन में छोटे-छोटे झकोरों के साथ बार-बार घुस आती। जिससे बलवन्ती एक क्षण के लिए आँखें मीच लेती और फिर हँसकर माँ से बातें करने लगती।

ऐसे में जमालो ने घर में प्रवेश किया। वह हरदेई के निकट जाकर बैठ गई और दुनियादारी के मिसले कहने लगी 'वाह काकी आज तो जल्द तोरिइयों पर हाथ साफ हो रहा है। कहो, अब तो कभी सिर में दर्द नहीं होता?'

हरदेई जमालो की आवाज पहचान कर हँस कर उससे कहने लगी—'आओ बहू बैठो। अरे अब क्या सिर में दर्द होगा, सारादारोमदार आंखों पर था, वे चली गईं फिर भी सिर दुखेगा !'

जमालो बलवन्ती की ओर देखकर हरदेई से कहने लगी—'काकी, आखिर बलवन्ती को कब तक घर में बैठाये रखोगी इसका कुछ उसीसा-पैंता तो करना ही पड़ेगा। इस साल ब्याह कर ही डालो।'

हरदेई दुखी होकर बोली—'न तो मेरी आँखें हैं और न घर में कोई आदमी ही, तुम्हीं सब लोगों का सहारा है बहू। कोई लड़का बताओ देने-लेने के लिए तो जानती हो कि मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी तो कन्या है, कोई भला मनुष्य मिल जाय जो लड़की लेकर मुझे उभार ले। कोशिश करो बहू मैंने मुहल्ले में और भी लोगों से कह रखा है। इस साल ब्याह होना जरूरी है।'

बलवन्ती भोजन कर चुकी थी। अपने व्याह का प्रसंग चलता देखकर वह वहाँ से उठ गई। हरदेई भी खाने से निवृत हो कुल्ला करके जमालो के निकट आकर बैठ गई और उससे बातें करने लगी।

बलवन्ती बर्तन मलने लगी और हरदेई तथा जमालो वार्ता—जमालो कह रही थी—'कुछ न पूछो काकी, बड़ा अन्धेर है। जमाना बहुत खराब आ गया है। मैं रोज देखती हूं कि बलवन्ती जब मेरे घर चप्पलें लेने और देने जाती है तो मुए कारीगर उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखा करते हैं। मुझे यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। बहुत दिनों से बात मन में थी आज जब मौका आया तो मुँह से निकल गई।'

इस पर हरदेई के मुँह से एक गर्म उसांस निकल पड़ी। वह धीरे-धीरे बोली—'हां यह तो दुनिया की रीति ही है, लेकिन मुझे अपनी वालो पर भरोसा है बहू। मैं उसे लड़की नहीं लड़का समझती हूं, फिर भी जमाना आंखें मूंद कर चलने का नहीं है, क्योंकि खुली आंखों में

तो दुनिया धूल झोंक ही देती है। मैंने तो सोचा है बहू कि अपनी यह मड़ैया वेच डालूं और बालो के हाथ पीले कर दूं।'

जमालो कुछ नहीं बोली। वह जिस लिए आई थी और जो कुछ कहना चाहती थी उसी के लिए अवसर ढूंढ़ रही थी। किन्तु हरदेई दूसरा धार में बहने लगी। तब उसने अपने दूसरे अस्त्र का प्रयोग किया। बलवन्ती बाल्टी लेकर बाहर नल पर पानी लेने चली गई थी जमालो ने अवसर उपयुक्त देखा तो वह हरदेई के कान के पास मुंह लेजाकर गोसे की बात कहने लगी—'और भी कुछ सुना है काकी ! अगर बुरा न मानो तो कह दूं।'

'क्या ?'

बस जमालो यही तो सुनना चाहती थी। वह मन ही मन मुदित हो कहने लगी—'बलवन्ती के पीछे मैं भी रोज-रोज मार खाती हूं अभी तीन चार दिन हुये तो उन्होंने (नेवाजी) मेरी नाक ही फोड़ दी थी, सेरों खून निकल गया था, काकी इसी लिए......।'

अँय, तुम क्या कह रही हो बहू ! मेरी बलवन्ती ऐसी नहीं है। वह इतनी सीधी है कि दुनिया के छक्के-पन्जे कुछ नहीं जानती।' हरदेई जमालो की ओर उन्मुख होकर रह गई।

और जमालो कहती गई—'सच काकी, चाहे बलवन्ती की लाग हो और चाहे उनकी, लेकिन कुछ दाल में काला है जरूर। मैं देखती हूं कि वे बलवन्ती से हँस-हँस कर बातें करते हैं और वह तनिक भी नहीं सकुचाती। ये लच्छन कैसे हैं, अब तुम्हीं सोच लो।'

'तो कान खोलकर सुन लो; कल से मेरी बालो तुम्हारे घर नहीं जायेगी ! अपने दाम को झींखो जो खोटा है। मैं बालो के लिए कुछ भी सुनना नहीं चाहती ! वह मेहनत करती है और उसका पैसा लाती है। हराम में नेवाजी उसे नहीं दे देता है। काम की कमी नहीं, अब वह तुम्हारा काम नहीं करेगी।' बात कहते-कहते आवेश से हरदेई

हांफने लगी।'

इतने में बाल्टी का कड़ा जोर से खटका। बलवन्ती पानी लेकर आ गई थी। हरदेई जोर से बोली—'यहाँ आओ बालो; चप्पलें कहाँ रखी है, लाकर इन्हें दे दो। और कल से खबरदार जो तुम नेवाजी के घर गई। कोई अन्नदाता नहीं है वह मेरा।'

बलवन्ती एकदम सहम गई। वह जल्दी से जमालो के पास आई और आश्चर्य चकित हो पूछने लगी—'क्या बात हुई भाभी ?'

'बात की बच्ची ! मैं जो कहती हूं पहले वह कर ! क्या कालिख पुतवाना चाहती है मेरे मुँह में !' यह कहते-कहते हरदेई उठकर खड़ी हो गई और बालो भय से थर-थर काँपती हुई अधसिली चप्पलें उठा लाई और लाकर जमालो के सामने रख दीं।

जमालो ने चप्पलें आंचल में रख लीं और मन ही मन मुस्कराती हुई वहाँ से चली गई।

इतनी आयु में बलवन्ती ने मां को इसके पहले इतने क्रोध में कभी नहीं देखा था। आज तो उसकी रूह काँप गई थी। आतंकवश वह माँ से एक शब्द भी नहीं पूछ पाई। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे और वह वहीं बैठ कर सुबक-सुबक कर रोने लगी।

दिन डूबने तक भी जब बलवन्ती की सिसकियाँ सांस ले रही थी तब हरदेई का हृदय भर आया। स्नेह भरा हाथ उसके सिर पर फेरती हुई ममता का घड़ा उड़ेलकर बोली—'न रोओ बालो मैं तुम पर थोड़े ही नाराज हूं। मुझे तो जमालो पर खार था। वह कलमुँही तुम्हें बदनाम करना चाहती है। दुनिया भर की उल्टी-सीधी बातें कर रही थी तो मैंने कह दिया कि कल से बालो तुम्हारे घर नहीं जायेगी। उठो, मेरी बच्ची, दुनिया में गरीबों को जीने का भी हक नहीं है। इसलिए तो जमालो हमारी आबरू से खेलना चाहती है। कल मैं गुरदीन चौधरी से कहूंगी, वहाँ से तुम्हें काम मिल जाया करेगा।'

बलवन्ती समझ गई कि जमालो ने झूठी-सच्ची बातें कह कर मेरे लिए वह रास्ता बन्द कर दिया जिससे मैं उसके घर कतई न जा सकूं। उसके मन में चोर पहले से था कि कहीं मैं नेवाजी की मेहरबानी पर तो नहीं जी रही हूं ? जमालो एक गिरी हुई औरत है, चोर की दाढ़ी में तिनका। समझी होगी कि जिस तरह नेवाजी उसको भगा लाया है वैसे ही मुझे भी बरगला लेगा। जो कुछ हुआ वह अच्छा हुआ। हम लोग भूखों नहीं मर जायेंगे। यह सोचती हुई बलवन्ती उठ खड़ी हुई उसने देखा कि मां की आँखों से आँसू की धारें बह रही हैं तो वह फफक कर रो पड़ी और मां के गले से ऐसे लिपट गई जैसे कोई हठी शिशु।

हरदेई रोती जा रही थी और कहती जा रही थी—'तू अपना मन छोटा क्यों करती है पगली ! मैं जानती हूं कि तू जान दे देगी, लेकिन आन नहीं छोड़ेगी। न रोओ तुम जितनी सीधी हो उतनी ही दुनिया तुम से दुश्मनी रखती है।'

बलवन्ती चुप थी। वह सिसक-सिसक कर रो रही थी और हरदेई अपनी धोती के छोर से उसके आंसू पोंछ रही थी।

—o—

***

नेवाजी चौंक-चौंक कर रह जाता था कि आखिर क्या कारण है कि कई दिनों से बलवन्ती काम लेने नहीं आ रहीं है। कहीं कोई उल्टी-सीधी बात तो नहीं हो गई है। समझ में नहीं आता कि क्या मसला है ? रोज वह शाम को चप्पलें देने आती थी और अगर किसी दिन उसके आने के पहले मैं बाजार चला गया होता तो जमालो उसे दुतकार कर भगा देती थी मजदूरी के पैसे कभी नहीं देती थी। उस दिन वह इतनी मेहरबान क्यों हो गई बलवन्ती पर, जो मेरी नामौजूदगी में चप्पलें रखवा ली और पैसे भी दे दिये। मालूम होता है कि ये जमालो के ही बेले हुये पापड़ हैं, उसी ने कोई गुल खिलाया है, वरना बलवन्ती जरूर आती।

और था भी यह सब मायाजाल जमालो का ही। वह बलवन्ती के घर से जो चप्पलें लाई थी, उनमें से कुछ अधसिली थीं। उनको जल्दी-जल्दी उसने बैठकर सी डाला था और जब नेवाजी बाजार से लौटा तो उसके सामने वे चप्पलें रख दीं और बता दिया कि बलवन्ती चप्पलें दे गई है। मैंने उसको पूरे पैसे दे दिये हैं।

उस समय नेवाजी के मन में कुछ खटका जरूर था और अब वह सोच रहा था कि कहीं जमालो ने बलवन्ती से कोई बहुत रूखी बात तो नहीं कह दी जिसको उसने बुरा माना हो और अपने घर बैठ रही हो। यह सोचकर एक दिन वह बलवन्ती के घर गया।

वहां बलवन्ती बैठी चप्पलें सी रही थी और हरदेई पड़ोस में किसी के घर गई थी। नेवाजी को देखते ही बलवन्ती ने उसे मोढ़ा दिया और

नेवाजी चौंककर पूछने लगा—'यह क्या बलवन्ती ? तुम मेरे घर नहीं आई ? आज कल क्या किसी दूसरे का काम कर रही हो ?'

बलवन्ती ने दृष्टि चप्पल पर स्थिर कर रखी थी। वह शान्त-स्वर में धीरे धीरे कहने लगी--'हाँ मां का कहना भी तो मानना है। गुरदीन चौधरी के घर से सवेरे चप्पलें आ जाती हैं और शाम को उनका कारीगर पैसे दे जाता और चप्पलें ले जाता है।'

अब नेवाजी चिहुंक कर रह गया। वह खोया-खोया सा होकर कहने लगा—'ऐसा क्यों हुआ बलवन्ती ? मुझसे तुम्हें कोई शिकायत है।'

इस पर बलवन्ती छूटते ही बोल उठी—'शिकायत की बात नहीं है नेवाजी भाई, माँ का कहना है कि मेरा किसी के घर आना-जाना ठीक नहीं है। इसीलिए उन्होंने यह इन्तजाम किया है।'

नेवाजी कुछ सोचता रह गया। वह कुछ क्षण बाद बोला 'काकी, अगर मुझ से कहती तो मैं भी इन्तजाम कर सकता था जो गुरदीन चौधरी ने किया है। पता नहीं वे मुझे गैर क्यों समझती हैं ? कहाँ गई है, मैं उनसे कुछ बातें करना चाहता हूं।'

'पड़ोस में ही कहीं गई हैं, मुझे तो बताया नहीं, देर हुई आती ही होंगी।'

बलवन्ती के मुँह से यह सुनकर नेवाजी उससे कहने लगा—'समझ में नहीं आता कि आखिर काकी ने ऐसा क्यों किया। मैं तो हमेशा उनकी मदद करने की ही सोचता रहा। और वे मुझसे दूर-दूर भागती हैं। तुम्हीं बताओ बलवन्ती कि यह सर सर मेरी तौहीन नहीं है तो और क्या है ? भला, क्या कहते होंगे अपने मन में गुरदीन। कुछ तो पूछा ही होगा, उन्होंने काकी से ?'

बलवन्ती अपने कार्य में पूर्णतया व्यस्त थी। समय तीसरे पहर का था, क्योंकि बाजार जाने में अभी बहुत देर थी। वह बात समाप्त कर

मोढ़ा बलवन्ती के निकट खींच लाया और बलवन्ती कहने लगी–'कह तो दिया कि मुझे कुछ भी नहीं मालूम। अभी माँ आती होंगी, उनसे पूछ लेना।'

इतने में टोह-टोह कर चलती हुई हरदेई वहाँ आ पहुंची। उसको देखते ही नेवाजी विनयी स्वर में पूछने लगा 'मुझसे क्यों नाराज हो गई हो काकी ? सुना है, बलवन्ती आजकल गुरदीन चौधरी का काम कर रही है। आखिर मुझसे क्या खता हो गई ?'

हरदेई नेवाजी हो के निकट बैठ गई और सहज स्वर में बोल उठी—'तुमसे खता नहीं हुई नेवाजी कसूरवार तो मैं हूं, जो बलवन्ती को तुम्हारे यहां भेजती रही। न बालो को वहां भेजती और न जमालो मेरी लड़की को बदनाम करने की हिम्मत करती।'

नेवाजी एकदम क्रोध से आग बबूला हो उठा और व्यस्त स्वर मे पूछने लगा—'क्या कहा जमालो ने तुमसे काकी ? क्या बदनाम करती है वह बलवन्ती को ? मुझे भी तो बताओ, मैं जाकर उसकी अभी खबर लेता हूं।'

हरदेई नेवाजी को उत्तेजित होते देखकर शान्ति पूर्वक कहने लगी–'तुम्हें भगवान की कसम है नेवाजी जमालो से मत कुछ पूछना, नहीं तो वह तिल का ताड़ बनाने लगेगी। मैं जानती हूं कि तुम जाकर उसको मारो पीटोगे और वह चिल्ला-चिल्ला कर डुग्गी पीटती फिरेगी कि बलवन्ती के पीछे तुम उसकी छीछालेदर करते हो। तब तुम्हारा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा और बिरादरी में मेरी थू-थू होने लगेगी। अभी उस दिन मुझसे कह रही थी कि काकी, बलवन्ती जब मेरे यहाँ चप्पलें ले और देने जाती है तो कारीगर उसकी ओर घूर-घूर कर देखते हैं- और कहां तक बताऊँ, बलवन्ती के पीछे मैं भी रोज-रोज मार खाती हूं सो नेवाजी भइया, इज्जत आदमी के लिए बहुत मंहगी है। मैंने सोच लिया है कि, अब बलवन्ती घर के बाहर नहीं निकलेगी मह

दो महीने में ही उसका कहीं न कहीं ब्याह कर दूंगी। आज को जमालो ने मुझसे कहा; कल को ढिंढ़ोरा पीटती फिरेगी। तब क्या मैं कहने वालों का मुंह बन्द कर लूंगी? मुझे तुम से कोई शिकायत नहीं है नेवाजी, जाओ पहले अपना घर देखो।'

नेवाजी ठुड्डी पर हाथ दिये हरदेई की एक-एक बात बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह जब हरदेई की वार्ता समाप्त हुई तो एक दीर्घ उच्छ्वास ले उठकर खड़ा होता हुआ बोला 'हां ठीक कहती हो काकी, सब से पहले मुझे ही अपना घर देखना पड़ेगा। जमालो की हिम्मत बहुत बढ़ गई है मैं तो उसको अपने घर में लाकर पूछता रहा हूं।'

नेवाजी जब बलवन्ती के घर से बाहर निकला तो वह क्रोध से दांत पीस रहा था और कभी-कभी होंठ चबाता हुआ सोचने लगता कि जमालो को कितनी हसद है बलवन्ती से वह समझी होगी कि कहीं मैं उसके साथ ब्याह न कर लूं। इसीलिए उसने यह चाल चली है। कितना सफेद झूठ बोली वह मुझ से कि बलवन्ती चप्पलें दे गई है और मैंने उसको मजदूरी दे दी है। पानी में गिराया हुआ मल भला कहीं नीचे बैठता है तनिक ही देर में वह ऊपर आकर तैरने लगता है। मैं जाकर अभी उसको आड़े हाथों लेता हूं। अगर उसने बलवन्ती को बदनाम करने के लिए जबान खोली तो धक्के मारकर घर के बाहर निकाल दूंगा। क्या करूं मैं उस कुद्द रूप (कुरूप) को घर में रखकर वह अपना सुख चाहती है और मेरे रास्ते में कांटे बिछाती हैं। वह मुझ पर एक बिहाता (विवाहिता) औरत की तरह अपना हक समझती है, यह नहीं चलेगा। भला कहीं मेढ़कियां भी मदार जाती हैं।

नेवाजी क्रोध से उबलता हुआ घर की ओर जा रहा था। उसके पांव सीधे नहीं पड़ रहे थे। ऊपर पेड़ों की फुनगियों पर फीकी-फीकी पीली धूप पड़ रही थी और नीचे की धरती उमस भरी गरम-गरम

सांसे छोड़कर नेवाजी को और भी अधिक उत्तेजित कर रही थी।

× × ×

बाहर अभी उजाला था, लेकिन घर के भीतर अन्धकार का धीरे-धीरे आगमन हो रहा था। कारीगर लोग अपना-अपना काम निपटा चुके थे। वे जाने की तैयारी कर रहे थे और इस प्रतीक्षा में थे कि नेवाजी आये और उनकी मजदूरी का भुगतान करे। मगर नेवाजी घर में घुसते ही सीधा जमालो के पास गया। वह आंगन में बैठी ककड़ी काट-काट कर खा रही थी। नेवाजी को देखते ही एक ककड़ी उसकी ओर बढ़ाकर मधुर आग्रह करती हुई बोली—'लो, तुम भी खाओ, देखो कितनी मुलायम है?'

नेवाजी ने ककड़ी उसके हाथ से लेकर जमीन पर पटक दी और घृणा पूर्वक मुंह बिचका कर बोला—'जैसी तुम मुलायम हो न? मैं जानता हूं कि कितना जहर भरा है तुम्हारे अन्दर? हरदेई के पास तुम क्या करने गई थीं?'

जमालो पति का बिगड़ा हुआ रुख देखकर समझ गई कि उसको असलियत का पता चल गया है। किन्तु वह दबी नहीं तमक कर बोली—'यह मुझसे क्यों पूछते हो? जब अपनी चादर काली होती है तो आदमी दूसरे को गुर्रे-डब्बे दिखलाता है। कुत्ते पर जोर नहीं चला, तो चलें गदहे के कान उमेठें। जाकर उसी बलवन्ती से पूछो न, मैं कुछ नहीं बताती।'

'तुम्हारे बतायेंगे फरिश्ते! हो किस हवा में!' कहने के साथ नेवाजी ने जोर से एक थप्पड़ जमालो की कनपटी पर जड़ दिया। वह तिलमिला उठी और जोर-जोर से रोने लगी।'

कारीगर दौड़ पड़े। वे नेवाजी को खींच कर बाहर ले जाने लगे। लेकिन वह क्रोध से पागल हो रहा था। उसमें पता नहीं आवेश ने कितना बल भर दिया था कि वह टस से मस नहीं हो रहा था।

कारीगरों को आया देख जमालो साहस पाकर त्रिया-चरित्र पर उतर आई। वह दोनों हाथों से सिर पीटती हुई चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थी—'देखो तो निगोड़े को, चला है मुझ पर हाथ उठाने। यह आंखें सेंकेगा और मैं सह लूंगी। मैंने इसके पीछे अपने घर में लात मार दी और अब यह दूसरी औरत करना चाहता है। उस रांड बलवन्ती के मैंने कन्ने काट दिये तो मुझ पर खार खा रहा है।'

नेवाजी का चेहरा क्रोध से आरक्त हो उठा और वह दांत पीस कर जोर से चिल्लाया—'मैं कहता हूं मुंह बन्द करलो जमालो वरना मैं तुम्हारी जबान खींच लूंगा।'

इस पर जमालो उसके पास आ गई और ईंट का जवाब पत्थर से देती हुई बोली—'ले खींच, देखूं, कितनी मर्दमी है तुझ में ? जबान खींचेगा, तो तू भी फांसी पर चढ़ेगा।'

नेवाजी ने आव देखा न ताव वह झपट कर जमालो पर बाज सा टूट पड़ा और घूंसों-घूंसों उसका मुंह फोड़ने लगा। कारीगर बुरी तरह से उससे गुंथ गये। बड़ी कठिनाई के बाद वे उसको छुड़ा पाये। जमालो का मुंह लोहू-लुहान हो गया था। वह जान निकाल कर पत्थर पिघालने वाले करुण-क्रन्दन के साथ नेवाजी को गालियां भी देती जा रही थी।

नेवाजी का क्रोध उबलता ही जा रहा था। यदि उस समय उसका वश चलता तो वह उसको कच्चा चबा जाता। आखिर जोर लगाकर वह छूट ही तो गया और जमालो के बाल पकड़ कर लातों-लातों आंगन में घसीट उसे पीटने लगा। हो-हल्ला सुनकर पड़ोस की स्त्रियां, पुरुष और बच्चे आंगन में जुट आये। लोगों ने नेवाजी को पकड़ लिया।

तब जमालो उठकर खड़ी हुई और ततैय्या सी जाकर नेवाजी से लिपट गई। वह कह रही थी—'असल बाप का बेटा हो तो जान ले ले

मेरी, नहीं तो दोगला है। उस हरामजादी बलवन्ती के पीछे मेरी देह का गुरिया-गुरिया तोड़ दिया है।'

यह कहकर रोती हुई जमालो भीड़ की ओर हाथ नचा-नचा कर कहने लगी–'अब तुम्हीं लोग इन्साफ करो। अगर इसे बलवन्ती से आंखें लड़ानी हैं तो मेरी जिन्दगी क्यों बरबाद की।'

लोगों में चखचख मच गई। काना-फूसी का बाजार गर्म हो उठा। सभी समझ गये कि नेवाजी बलवन्ती के पीछे जमालो को पीट रहा है। अगर दोनों में कुछ सांट-गांठ न होती तो फिर यह झगड़ा क्यों होता ?

जमालो की जबान कतरनी सी चल रही थी। अन्धेरा खूब घना हो चला था। एक कारीगर ने आंगन की बत्ती जला दी जिससे जमालो का चण्डी स्वरूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। नेवाजी को अब बदनामी नहीं सह हो रही थी। वह लोगों को झिटककर जमालो पर फिर टूट पड़ा। अब की बार उसने उसको अपने बराबर ऊँचे उठाया और तेजी के साथ नीचे जमीन पर पटक दिया।

'हाय मर गई मैं ! इस हत्यारे ने मुझे मार डाला ! दौड़ो, बचाओ, मार डाला इस हत्यारे ने ! मौत आये हराम जादे को !'

इसी तरह जमालो कांखती जाती थी, रोती जाती थी और यह कहती जाती थी।'

'अब की बार पड़ोसी नेवाजी पर बिगड़ पड़े। वे उसको बुरा भला कहने लगे। फिर खींचकर बाहर ले जाने लगे। यह देख गाठों पर हाथ रख कर जमालो उठी और लपट कर चमड़ा काटने वाली रांपी उठा लाई और उसको नेवाजी को देती हुई बोली—'अब जाता कहाँ है ? जब तू आज मेरी जान लेने पर तुला ही है तो ले, इस रांपी से मेरी गर्दन काट दे। कमीना अपना कमीनापन दिखलाता है। गाज पड़े तुझ पर, हैजा बटोरे तुझको ! मेरी ....।'

अभी जमालो इतना ही कह पाई थी कि नेवाजी तीर की तरह झिटककर उसके निकट आ गया। उसने रांपी छीनकर एक ओर फेंक दी और दांतों से किटकिटाकर जमालो की नाक चबाने लगा। लोग घबड़ा गये। जब तक वे सब बचायें, बचायें तब तक वह नाक काट घर से बाहर भाग गया। जमालो के नाक और मुँह से खून के फौव्वारे छूटने लगे और वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

ç—

सवेरा होते ही सारे मुहल्ले में यही चर्चा चल रही थी कि बलवन्ती और नेवाजी का अनुचित सम्बन्ध था। जमालो ने उसमें विघ्न डाला इसलिये इससे चिढ़ कर नेवाजी ने उसकी नाक काट ली। रात को तो वह फरार हो गया था। लेकिन अभी अलख सुबह पुलिस ने उसे एक पार्क में सोते हुये गिरफ्तार कर लिया है। झगड़े का यह नतीजा हुआ कि घर में बिरादरी के पंच का ताला बन्द है और जमालो अस्पताल में।

यह घटना जब बलवन्ती और हरदेई ने सुनी तो दोनों सूख कर रह गई। हरदेई बहुत घबड़ा गई। वह सोचने लगी कि आखिर जिस बात का डर मुझे था, वही हुई। मैंने बड़ी गलती की जो नेवाजी को असलियत बता दी। इससे तो कोई दूसरा बहाना कर देती तो आज को बस्ती में थू-थू नहीं होती। अब क्या होगा, बिरादरी का कोई भी आदमी ो के साथ ब्याह करने को तैयार नहीं होगा! क्या होगा मेरी बच्ची का, मेरे तो भाग्य फूटे थे ही अब वह भी बदनाम होकर क्या कुत्तों की जिन्दगी जियेगी। भगवान हम दोनों मां बेटी को उठा लेता तो उसकी बड़ी दया होती।

इस तरह हरदेई का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। वह हक्का-बक्का हो रही थी और ऐसा लग रहा था कि उसे खाया नहीं पच रहा है।

और बलवन्ती का हाल तो माँ से भी कहीं अधिक गया बीता था। वह स्वयं अपने पर खीझ रही थी मां अक्सर मुझे मना करती रहती थी कि नेवाजी अच्छा आदमी नहीं है। उसके घर ज्यादा न आया-जाया

करो। लेकिन रोजी-रोजगार के लिए आदमी न जाने कहां-कहां भटकता है। मैं भी लालचवश आती-जाती रही। नतीजा यह हुआ कि अब हिम्मत नहीं पड़ रही है कि कौन मुंह लेकर बाहर निकलूं! मैंने कोई बुराई की होती और बदनाम होती तो इतना दुख नहीं होता, मगर नाहक की बदनामी सही नहीं जाती है। पता नहीं मैंने क्या बिगाड़ा था नेवाजी का, जो वह मेरी बदनामी करा बैठा। जमालो को जब-तब पीटता था लेकिन ऐसी नौबत कभी नहीं आई थी।

रात भर हरदेई जागती रही और बलवन्ती भी करवटें बदलती रही। इस बीच न मां को सुधि थी बेटी की और न बेटी को ही उसका ध्यान था। दोनों अपनी-अपनी आग में जल रही थीं।

सवेरे जब सूरज की पहली किरण फूटी और हरदेई बलवन्ती के साथ बाहर बम पुलिस में शौच से निवृत होने गई तो कान नहीं दिये जा रहे थे। औरतें पता नहीं क्या-क्या बक रही थीं। बलवन्ती की दृष्टि नीची थी। किसी प्रकार दोनों वापस लौटीं और अन्दर आते ही हरदेई ने किवाड़ बन्द कर कुण्डी लगा ली। वह बलवन्ती से कहने लगी—'तुमने सुना बालो। बाहर लोग क्या कह रहे थे। कैसे निकलना होगा घर से। राह चलते कीचड़ उछाला जायेगा।'

बलवन्ती कुछ नहीं बोली। वह चुपचाप खड़ी माँ की ओर देखती रही। हरदेई फिर कहने लगी— अब मैंने ठान लिया है कि बालो जल्दी से जल्दी यह घर बेच दूंगी और तुमको लेकर किसी दूसरी जगह चली जाऊंगी। यहाँ बिरादरी वाले चैन से नहीं बैठने देंगे। सूत न कपास, बिना बात का बतंगड़ खड़ा कर दिया है इस दाढ़ीजार नेवाजी ने। उसका क्या बिगड़ा? अरे साल छै महीने की सजा होगी, काटकर घर आजायेगा और जमालो एक बेहया औरत है। उसकी नाक तो उस दिन ही कट गई थी, जिस दिन नेवाजी उसको भगा कर लाया था और अब तो वह खुल कर नाचेगी। नंगा नाचेगा तो फटेगा क्या? बालो आज से जब रात हो जायेगी तभी मैं तुम्हें दिशा मैदान के लिए बाहर जाने

दूंगी और यही मुझे भी करना होगा। बदनामी बदबूदार हवा है, उससे बचने के लिए यही करना होगा मेरी लाडो।' यह कह कर हरदेई ने आगे बढ़कर पुत्री को वक्ष से लगा लिया और फूट-फूट कर रोने लगी।

बलवन्ती के भी आँसू आ गये। वह अपने आंचल से मां के आँसू पोंछती हुई बोली—'माँ, झूठी बदनामी से आदमी को कभी नहीं डरना चाहिए। जो मुझे बद कहेगा, मैं उसको ऐसा जवाब दूंगी कि उसकी बोलती बन्द हो जायेगी। भला यह भी कोई तमाशा है। ज्यादा सिधाई भी अच्छी नहीं होती और फिर यह क्यों भूल जाती हो माँ कि सीधे का मुंह कुत्ते चाटते हैं। तुम चिन्ता न करो। मैं जब खरी हूं तो खोटा कहने वालों को मुंह की खिलाकर ही रहूंगी। मुझे डर है कि शायद आज गुरदीन चौधरी के यहां से कोई चप्पलें देने भी नहीं आयेगा। सो ऐसी-तैसी बिरादरी की माँ। मैं बाजार में जाकर काम करूंगी। मजाल पड़ी है, कोई मेरी ओर आँख उठाकर देख जाय उसकी आँख निकाल लूंगी, दुनिया से जितना डरोगी, दुनिया वाले उतना ही सतायेंगे। चलो बैठो, अभी मैं खाँड का शरबत बनाती हूं। फिर चौका बर्तन से निपट लूं इस बीच अगर चौधरी के यहां से चप्पलें आ जाती हैं तो ठीक, नहीं तो मैं फूलवाली गली, चमड़ा बाजार जाऊंगी, कुछ धेली बारह आने का कार्य मिलेगा ही। तुम चिन्ता न करो, कोई भी गलत कदम उठाने के पहले मैं अपनी जान दे दूंगी, लेकिन तुमको यह सुनने का मौका नहीं दूंगी कि तुम्हारी लड़की बदचलन है।'

बलवन्ती को उत्तेजित होते देख हरदेई धीरे-धीरे उसे समझाने लगी और बलवन्ती गृह कार्यों में व्यस्त हो गई। दिन काफी चढ़ गया था, लेकिन अभी तक गुरदीन चौधरी के यहां से कोई भी कारीगर चप्पलें देने नहीं आया था।

धीरे-धीरे सवेरे की धूप चटक होकर अब दोपहर के आगमन की सूचना दे रही थी। बलन्वती का ध्यान उसी ओर लगा हुआ था कि-गुरदीन चौधरी का आदमी अब तक चप्पलें देने क्यों नहीं आया। देर तक प्रतीक्षा कर लेने के बाद उसने माँ से कहा-'माँ, फिर मैं जाती हूं फूलवाली गली। काम तो करना ही होगा, क्योंकि पेट पहले है।'

इस पर हरदेई कहने लगी--'मेरी समझ से मुझे पहले चौधरी के यहां जाना चाहिए। मैं उनसे जाकर पूछूंगी कि आज चप्पलें क्यों नहीं भेजी।'

मां की यह बात सुनकर बलवन्ती की भौहों में कुछ तनाव आया और वह उग्र होकर बोल उठी--'और कुछ नहीं होगा माँ, वहाँ जाकर तुम अपना मान खोओगी। जान-पहचान और जाति-बिरादरी सब ये दुनिया के ढकोसले हैं। गैर आदमी काम दे जाता है, मगर अपने उल्टी छुरी से गरदन रेतते हैं। मैं उन चमारों का काम करूंगी जो देहात से चमड़ा खरीदने और बेचने आते हैं। चप्पलें सीने में तो आँखों पर जोर पड़ता है, बहुत बारीक काम है और वहाँ बाजार का काम बहुत मोटा है मां। बड़े चमड़े के टुकड़ों में से छोटे टुकड़े बीनने में कितनी देर लगती है। ढेर-के-ढेर लगे रहते हैं बाजार में। घण्टे दो घण्टे की मेहनत में रुपया धेली कमा लूंगी। तुम दुनिया से डरो। मैं दुनिया से नहीं डरती जो सोलहो आने झूंठी है। मैं तो उसके सिर पर पांव रखकर चलूंगी। अभी तक मैं जितनी सीधी थी माँ, उतनी ही टेढ़ी बनूंगी, तभी काम चलेगा। बस, अब जाती हूं और तुमसे भी कहे देती हूं कि अपने ही घर में बैठना किसी पड़ोसी के यहाँ जाने की जरूरत नहीं। बाज आई ऐसे पड़ोसी से और दुनियादारी से।'

यह कहकर तमकती हुई बलवन्ती पैरों में चट्टी डाल चट्ट-चट्ट करती हुई बाहर जाने लगी।

हरदेई ने लपककर पुत्री को पकड़ लिया और उसका हाथ झटकती

हुई बोली—अरे क्या पागल हुई हो बालो। अभी ताजा-ताजा मामला है तुम बाजार जाओगी तो लोग और भी हंसेंगे। मैं......।'

'उनके मुंह पर थू माँ! देखो मैं आज हंसने और आवाज कशी करने वालों की कैसी खबर लेती हूं। जो बिरादरी मेरी अन्धी माँ को सहारा नहीं दे सकती और मेरा घर बसाने की बजाय उजाड़ देना चाहती है उसे क्या हक है, मुझ पर हँसने, और रुग्राब गालिब करने का। बस अब, तुम चुप भी रहो मां, और देखो सच्चाई में कितना बल होता है।' बलवन्ती एक सांस में ही यह कह गई। उसके नथुने जोर-जोर से चलने लगे। रोम-रोम आवेश से सतर्क हो गया, उसने माँ के बूढ़े हाथ को झटका देकर अलग कर दिया और चौखट पर पहुंच किवाड़ों की कुंडी खोलने लगी।

रोती हुई हरदेई उसके पीछे दौड़ी और दोनों हाथ पसारती हुई बोली—'न जाओ बालो, मान जाओ मेरी बच्ची, दुनिया गरीबों की दुश्मन है।'

लेकिन बलवन्ती चली गई। तब हरदेई ने किवाड़े भेड़ लिये और उन पर पीठ के सहारे टिक, सिर पर दोनों हाथ पटक बिलख-बिलख कर रोने लगी।

अब वैशाख की दोपहर का सूरज चमकीली किरणों में आग उगल रहा था। आंगन की धरती तवा सी जल रही थी और आतपी वायु के गरम-गरम शरीर झुलसा देने वाले झोंके किवाड़ों की मोटी-मोटी दराजों से हरदेई से टकरा रहे थे। रोते-रोते उसकी आंखों के आंसू सूख गये। उसका अन्तर जल रहा था और वह अब स्वयं यह अनुभव कर रही थी कि पहले तो गरीबी की मार से उसका कलेजा छलनी हो गया था और अब जल भुन कर खाक हो गया है।

दृढ़-प्रतिज्ञ और परिश्रम-रत व्यक्ति की 'श्री' चेरी है। वह उसके पीछे-पीछे घूमती है। लगन, साहस और धैर्य, ये तीनों मनुष्य के सच्चे साथी हैं उसे कभी धोखा नहीं देते। सोचकर रह जाना कायरता है और सोचे हुये काम को उसी समय करने लग जाना सबसे बड़ी सफलता है। आवेश यद्यपि अन्धा होता है और उससे प्रायः हानि की ही सम्भावना रहती है, किन्तु जब उसका प्रयोग उचित अवसर पर और उचित मानदण्डों में किया जाता है तो वह मनुष्य के सामने एक जीता-जागता और विलक्षण चमत्कार लाकर खड़ा कर देता है। बलवन्ती की विजय हुई। वह तेजी से क़दम रखती हुई चमनगंज से फूल-वाली गली पहुंची। मुहल्ले के लोगों ने उसको मुहल्ले से बाहर जाते देखा तो चौकन्ने हो गये; परस्पर गुफ्तगू करने लगे। इसके अतिरिक्त जो मुहल्ले के पड़ोसी क्रय-विक्रय के लिये चमड़े के बाजार में आये थे, वे भी बलवन्ती को वहाँ चमड़े का एक ढेर बीनते देख, चौंककर रह गये। किसी एक मसखरे स्वभाव के युवक ने उस पर व्यंग कर दिया। वह उसके पास जाकर बोला—'क्यों बलवन्ती, अब तुम बाजार भी करने लगी हो, अच्छा है बेचारा नेवाजी तो अपने घाट उतरा यहां उस जैसे तमाम नेवाजी हैं।' यह कहकर उसने बहुत ही भोंड़े ढंग से बलवन्ती के मुख पर अपनी आँखें गड़ाईं।

तब लाल-लाल आंखें करके क्रोध से फुफकारती हुई, रुष्टा नागिन की भांति वह उस युवक पर टूट पड़ी और भरी बाजार में हंगामा मच गया कि बलवन्ती ने मुसई को चट्टियों-चट्टियों पीट कर दुरुस्त कर दिया। शायद उसने उससे कुछ बदतमीजी की थी।

इस पर बलवन्ती के घर पहुंचने के पहले ही, हरदेई के कानों में यह बात पहुंच गई। वह घबड़ाकर रह गई और मन ही मन डरने लगी कि कहीं कोई नई आफत न आ खड़ी हो। बलवन्ती गुस्से में घर से गई थी। मैं जानती थी कि आज वह किसी न किसी से झगड़ा जरूर

करेगी। वही हुआ। भगवान, अब हमारी लाज तुम्हारे ही हाथ है किसी तरह साथ शान्ति के वह घर आ जाय, फिर मैं उसे बाजार कभी नहीं जाने दूँगी।

अभी हरदेई ऐसा सोच हो रही थी कि हँसती हुई बलवन्ती ने घर में प्रवेश किया। आते ही वह खुशी से उछल कर माँ के गले लग गई और हँसते-हँसते बोली—'मां, आज एक मुर्गे को तो हलाल कर दिया। मुहल्ले के लोग भी वहां थे। उनको देखते ही मैं समझ गई थी कि अभी मिनटों में यह बात तुम्हारे कानों में पहुंच जायेगी।'

'हाँ बालो, खुद गुरदीन चौधरी ही यहां आये थे। बाहर दरवाजे पर ही खड़े-खड़े वे मुझसे यह कहकर चले गये कि बलवन्ती की माँ, चमड़ा बाजार में बलवन्ती ने अभी-अभी पड़ोस के मुसई को चट्टियों से पीटा है। सारी बाजार में तहलका मचा दिया है।' हरदेई जब यह कह रही थी तभी बलवन्ती ने उसके हाथ पर एक रुपये का नोट रख दिया और बोली—'छोड़ो माँ! और यह लो, चार घण्टे भी तो नहीं बीते और एक रुपया मिल गया। अगर पहले ही मैंने इस ओर ध्यान दिया होता तो आज को यह नौबत नहीं आती। अब किसी की भी खुशामद करने की जरूरत नहीं है माँ। सब के मुँह अपने आप ही बन्द हो जायेंगे।'

इस तरह थोड़ी देर माँ बेटी में बातें होती रहीं। तीसरा पहर जा रहा था। और हरदेई अब भी पुत्री को समझाने में व्यस्त थी। मगर बलवन्ती दिन भर की भूखी थी। वह उठ कर आटा और दाल खरीदने चली गई।

थोड़ी देर में ही रोटियां सिक गईं। दोनों मां-बेटी ने क्षुधा शान्त की। इसके बाद दिन ढला रात आई और सवेरा हुआ। बलवन्ती का कार्यक्रम नियमित रूप से चलता रहा। वह बाजार जाती रही और बाहर के व्यापारियों का काम करती रही। इस पर एक अकेली हरदेई

ही नहीं, बल्कि सारा मुहल्ला आश्चर्य करता था कि बलवन्ती में अचानक इतना परिवर्तन कैसे आ गया और प्रतिद्वन्द्वी लोग, जहां उसको घृणा की दृष्टि से देखते थे वहां उनके विचार पलटने लगे कि यह सब झूठ था कि नेवाजी और बलवन्ती का अनुचित सम्बन्ध था।

भाग्य के पलड़े ऊँचे उठ रहे थे, नीचे गिर रहे थे। सृष्टि में नित्य नये परिवर्तन हो रहे थे। नेवाजी हवालात में ऐसे फड़फड़ा रहा था जैसे जाल में फँसा हुआ पखेरु। जमालो जीते जी नर्क भोग रही थी। उसके टांके टूट गये थे, उनसे पीप आ रहा था, जिसकी दुर्गंधि, अहर्निश उसके नथुनों में भरी रहती, और बलवन्ती महक रही थी, जुही की तरह, जिसकी सुरभि पर सारा संसार मुग्ध हो उठता है।

***

जेठ की लू ने धरती की आँखों में धूल झोंक दी थी और उसकी बरोनियों में भी गर्द के गुब्बारे फोड़ कर उन्हें धूल धूसरित कर दिया था। सारी धरती तप रही थी। उसका यह क्रम था दिन में अवनि पर पांव पड़ते ही आंच लगती थी। और रात को उसकी उमस के कारण पैरों के तलुवे पसीज-पसीज जाते थे। नेवाजी अभी हवालात के सीखचों में ही सड़ रहा था। मुकदमें की सुनवाई आरम्भ हो गई थी। सबूत हो चुके थे। नेवाजी ने तनिक भी झूठ का आश्रय नहीं लिया। उसने पूर्णांशों में अपने को अपराधी स्वीकार कर लिया था। अगले दिन फैसला सुनाया जाने वाला था। उसी के प्रति नेवाजी सोच रहा था, सजा होगी ही यह तय है। इस जमालो की बच्ची का मैंने खून न पी लिया तो मेरा भी नाम नेवाजी नहीं, जो मैं नहीं करना चाहता था, उसने उसके लिए आखिर मुझे मजबूर कर दिया। सजा हो और जल्दी से छूटूं फिर उसको बताऊंगा कि मैं कैसा कसाई हूं। कितना बड़ा नुकसान हुआ मेरा। चलता काम ठप्प हो गया, बदनामी हुई सो अलग और अब यहाँ पर मैं पैसे-पैसे को तरस रहा हूं, जमालो के हाथ सारी पूंजी होगी। बहुत मुमकिन है कि मेरे छूटने से पहले ही वह सब माल-मता लेकर चम्पत हो जाय।

लेकिन ऐसा सोचते क्षण नेवाजी को हँसी आ गई कि दाग लग जाने पर आदमी सब जगह ऐसा गंधा जाता है कि कोई उससे बात करना तो दूर रहा, उसे अपने पास तक नहीं बैठने देता। जमालो यों ही कुरूप थी और अब नाक कट जाने पर बहुत ही बदसूरत लगने लगी

होगी। मुहल्ले की औरतें यों ही उससे दूर-दूर रहती थीं और अब तो उसके पास भी नहीं फटकेगी। कौन पूछेगा उसको! मेरे घर के अलावा और कहीं भी ठीकाना नहीं मिलेगा उसे। वह जा ही कहां सकती है। अपनी कोशिश में वह कुछ उठा नहीं रखेगी, लेकिन अब उसका मोल माटी बराबर भी नहीं रहा। न वह बलवन्ती को बदनाम करती और न मुझे उसकी नाक काटने के लिए मजबूर होना पड़ता। बेचारी बलवन्ती क्या कहती होगी, अपने मन में।

इस तरह नेवाजी हवालात में हैरान था और बलवन्ती निर्भय होकर अपनी जीविका अर्जित कर रही थी उसके मन में जब भी नेवाजी का ख्याल आ जाता तो वह घृणा से भर जाती और सोचने लगती की नेवाजी अच्छा आदमी नहीं है। वह अपने मतलब के लिए दुनिया का नीच से नीच काम भी कर सकता है। उसका मन मेरी ओर से जरूर जला रहा होगा, तब तो यह नौबत आ पहुंची कि उसने जमालो की नाक काट ली। चोर को अगर चोर कह दो तो वह बांसों उछलता है यही गति नेवाजी की थी।

एक दिन हरदेई ने बलवन्ती को बतलाया कि उसने मकान का सौदा हीरामन पुरवे के मैकू चमार से कर लिया है तीन सौ रुपये मिलेंगे और कल कचहरी में लिखा पढ़ी हो जायेगी।

यह सुनकर बलवन्ती एकदम चौंक पड़ी और छूटते ही बोल उठी—'फिर हम लोग कहां रहेंगे माँ?'

हरदेई हंस दी और पुत्री के सिर पर हाथ फेरती हुई धीरे-धीरे कहने लगी—'अरे पगली! तुझे यह सोचने की क्या जरूरत! तुम अपने ससुराल चली जाओगी। रह गई मैं, सो कहीं भी गुजर कर लूंगी।'

'लेकिन फिर भी मां, आखिर कहां रहोगी? जो बिरादरी तुम्हें खाने के लिए एक दाना नहीं दे सकती है वह सिर छिपाने के लिए

जगह कैसे दे देगी ? समझ में नहीं आता कि तुम ऐसा क्यों कर बैठीं ? बयाना लौटा दो मां और कह दो कि मुझे मकान नहीं बेचना है।'

बलवन्ती के मुंह से आवेश भरी बातें सुनकर हरदेई फिर हंस पड़ी और तनिक गरुये स्वर में बोली—'तुम अभी बच्ची हो बालो। मैं जो कर रही हूं वह ठीक ही है बड़ों के काम में छोटों को दखल नहीं देना चाहिये। पहले तुमसे फुरसत पा लूं उसके बाद अपना भी किनारा कहीं न कहीं कर लूंगी। तुम चिन्ता न करो मेहनत करूंगी तो पेट भूखा नहीं रहेगा। दुनिया उनको दुतकारती है जो भीख मांगते हैं। मेहनत मजदूरी करके जिऊंगी बालो ! मुझे अपनी फिकर बिल्कुल नहीं है। बस, इसी कोशिश में लगी हूं कि किसी सूरत से जल्दी से जल्दी तेरे पैर पूज दूं।'

बलवन्ती ने मां से बहुत तर्क किया और हरचन्द कोशिश की कि वह मकान न बेचे। लेकिन हरदेई निश्चय पर दृढ़ थी कि मकान जरूर बेचना है और इसी महीने में कहीं न कहीं बालो का ब्याह कर देना है।

× × ×

नेवाजी को डेढ़ वर्ष का कठोर कारावास हो गया और जमालो स्वस्थ होकर घर आ गई थी। वहां आ कर उसने सुना कि हरदेई ने मकान बेच दिया है और इसी हफ्ते बलवन्ती की बारात आ रही है। उसका विवाह लखनऊ में तय हुआ है। लेकिन जलनवश वह हरदेई के घर नहीं गई, मन ही मन कुढ़ती रही कि बुढ़िया कितनी सयानी है। बात की बात में अपना सब काम बना लिया। मेरी खूब छीछालेदर हुई बलवन्ती के पीछे, और वह तनिक भी बदनाम नहीं हुई।

जमालो हरदेई व बलवन्ती के प्रति ईर्ष्या और द्वेष से भरी बैठी थी। लेकिन सच्चाई की गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। हरदेई ने

मुहल्ले वालों का सहारा नहीं लिया। उसने उसी मैकू भगत के पाँव पकड़े और हाथ जोड़े कि कोई लड़का वह ढूँढ दे जिसके साथ बलवन्ती का व्याह हो जाय। सभी व्यक्ति एक जैसे नहीं होते हैं। मनुष्य के रूप में राक्षस भी मिलते हैं और मिलते हैं देवता भी। मैकू साधु प्रकृति का व्यक्ति था। उसे अन्धी बुढ़िया पर तरस आ गया। दूर के रिश्ते में—लखनऊ में उसका एक भानजा था। उसका नाम था जोखू। मैकू ने उसी के साथ बलवन्ती का व्याह तय करा दिया और साथ ही उसने अपनी दरियादिली का दूसरा नमूना यह पेश किया कि जब तक बलवन्ती का व्याह नहीं हो जाता हरदेई उसी अपने पुराने घर में रहेगी और व्याह भी उसी घर से होगा।

व्याह की तिथि निकट आती जा रही थी। मैकू और उसके लड़के दौड़-दौड़ कर व्याह का इन्तजाम कर रहे थे। यह देख मुहल्ले वाले भी दुनियादारी करने लगे। हरदेई बहुत प्रसन्न थी। वह मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि मैकू खूब फले-फूले। बेचारा गैर होते हुये भी मेरे कितना काम आ रहा है। लोग सही कहते हैं कि लड़की किसी की कुआरी नहीं बैठी रहती। मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि बालो का व्याह इतनी धूमधाम से होगा और मैकू भगवान बनकर मेरी मदद करने आ पहुंचेगा। राम सबका है कसाई का भी और गाय का भी। उसने मेरी पुकार सुन ली। वह दिन अब जल्दी ही आने वाला है जब मेरी बालो दुल्हिन बनेगी।

हरदेई का मन आनन्द की उछाहें ले रहा था और बलवन्ती इस शुभ अवसर पर भी छिप-छिप कर रोया करती कि मेरे ससुराल जाने के बाद, मां का क्या होगा, वे कहाँ रहेंगी और क्या खायेंगी? समझ में नहीं आता कि उन्होंने क्या सोच रखा है।

ज्येष्ठ अमावस्या की लगन थी और अब दिन शेष रह गये थे केवल तीन। हरदेई के आंगन में मण्डप गड़ा था और व्याह का कार्यक्रम

सुचारु रूप से सम्पादित हो रहा था। मुहल्ले की स्त्रियां तथा बड़े-बूढ़े सभी उसके साथ थे। एक अकेली जमालो ही ऐसी थी जो इस बीच एक बार भी उसके घर नहीं आई।

हरदेई के पास दहेज में देने-लेने के लिये कुछ भी नहीं था, बिरादरी लम्बी थी। बरातियों और जनातियों का खूब आदर सत्कार हो जाय यही इच्छा थी। इसके लिये उसके पास की पूँजी के तीन सौ रुपये पर्याप्त थे। वह मन ही मन फूली नहीं समा रही थी कि भगवान ने उसकी बिगड़ी कैसी बना दी है। जैसे उसके दिन फिरे हैं, ऐसे ही सब के बहुरते रहें। उसकी अन्तरात्मा की यही एक पुकार थी, क्योंकि इस समय उसके अन्तर का कोना-कोना प्रसन्नता से खिल रहा था।

नियत तिथि पर गाजे-बाजों के साथ खूब धूमधाम से बलवन्ती की बारात आई। अतिशबाजी, कहार, पालकी और बाजों का खर्च मैकू ने सहृदयतावश अपने सिर पर ओटा था। इसी लिये बैण्ड बाजा था, जो फिल्मी गानों की धुन पर मनमोहक स्वरों में बज रहा था। ढोल और झांझ के साथ-साथ गोले छूट रहे थे जिससे उनका स्वर एक क्षण के लिये लुप्तप्राय सा होकर रह जाता। द्वारा चार होने के बाद पालकी एक ओर रख दी गई और आतिशबाजी का समा बंध गया। अनारों पर अनार छूटे मेहताब और महुए, चांदी के फूलों की तरह खूब चमके, चरखियां छूटीं उसके बाद लगातार कई गोले दगे, फिर बारात जनवासे चली गई।

जनवासा हीरामन के पुरवा में मैकू की बैठक में था, जिसे उसने स्वयं निर्वाचित किया था।

रात में भांवरें हुईं, सवेरे भात दिया गया और रात को कलेवा का आयोजन तो मुखर कर रह गया। हरदेई सोच रही थी कि अगर दामाद कलेवा में झगड़ा तो मैं क्या दूँगी उसे! कोई भी चीज तो नहीं है मेरे पास। लेकिन वह अवसर आया नहीं। इक्कीस-बाइस वर्ष का

युवक जोखू बहुत ही शर्मीला और सीधा था। इसके अतिरिक्त गेंदू ने उससे यह कह भी रखा था कि हरदेई बहुत गरीब है, कहीं ऐसा न हो कि तुम उसकी आत्मा को दुखा दो। किसी भी नेग के लिए मचलने की जरूरत नहीं है।

इस तरह जोखू कलेवा खाने लगा और हरदेई को मालूम हुआ तो उसकी आँखों से प्रसन्नता के आंसू बहने लगे।

रात को ही विदा-बिदाई हो गई और सवेरे बारात लखनऊ पहुँच कर गई।

जिस समय बलवन्ती को रात सुहागिनें पालकी में बिठा रही थीं तब हरदेई अपनी पुत्री से गले मिलकर ऐसी बिलख रही थी मानों गाय अपनी बछिया से जुदा हो रही हो। माँ-बेटी का करुण-क्रन्दन इतना करुण था कि क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी की आँखें अश्रुधाराएँ बहा रही थीं। पालकी चली जा रही थी और प्राची का आकाश अपनी माँग में बलवन्ती की ही भाँति सिन्दूर भर रहा था।

जिनके सिर पर से बचपन में ही माँ-बाप की छाया उठ जाती है वे अच्छे से अच्छा आश्रय पाते हुये भी सर्वथा अनाथ ही रहते हैं। बाप का वात्सलय और माँ की ममता संसार में बहुत ही अमोल हैं, इनकी पूर्ति कोई दूसरा नहीं कर सकता। कलक और कसक का सम्बन्ध खून और पसीने से बहुत गहरा है। स्वजन और आत्मीय ऐसे सम्बन्धी सहानुभूति ही कर सकते हैं उदार हो सकते हैं, लेकिन वात्सल्य और ममता से रिक्त ही रहते हैं। बलवन्ती का पति जोखू भी इन्हीं परिस्थितियों से गुजर रहा था। मैकू उसका सगा मामा नहीं था। दूर की रिश्तेदारी थी। लेकिन फिर भी यथाशक्ति वह जोखू का बहुत ध्यान रखता था।

आठ साल का जोखू जब अनाथ हो गया, तो वह जाति-बिरादरी में मेहनत-मजदूरी करके, पेट भरने लगा। विद्याध्ययन का प्रश्न उसके सम्मुख कभी नहीं आया। वह चमड़े की दुकानों में काम करता रहा और उसकी जीविका चलती रही। धीरे-धीरे वह बड़ा हुआ। उस बीच एक ऐसी दुर्घटना घटी कि उसके दाहिने हाथ में रांपी लग गई, जिससे दाहिने हाथ का अँगूठा और बीच की उंगली महीनों पकी रहीं और जब अच्छी हुई तो वे दोनों टेढ़ी हो गई थीं। अब वह न रांपी चला सकता था, न करतनी और सूजे का प्रयोग ही कुशलता पूर्वक कर सकता था। लोग उससे काम करवाने में हिचकने लगे। करता क्या न करता जोखू ने दूसरी युक्ति सोची। वह झल्ली ढोने लगा जिससे शाम तक रुपये डेढ़-रुपये की मजदूरी हो जाती और वह निश्चिन्त हो जाता।

बलवन्ती ने आकर जोखू का भाग्य बदल दिया था। अब घर में एक से दो हो गये थे। यद्यपि जोखू नहीं चाहता था कि बलवन्ती कुछ काम करे, लेकिन बलवन्ती काम-काजी थी बेकार बैठने की उसकी आदत नहीं थी। उसने बहुत आग्रह किया तब जोखू उस बात पर राजी हुआ कि वह बाजार से चप्पलें ले आया करेगा और बलवन्ती उनको घर में सिला करेगी।

इस तरह दिन भर चप्पलें सीकर रुपया बीस आना बलवन्ती पैदा करती थी और उतने ही पैसे झल्ली ढो कर ले आता था जोखू। घर में शान्ति थी, सन्तोष था इसलिये सुखद वातावरण मुखर-मुखर कर रह जाता था।

बलवन्ती एक दिन जोखू को प्रसन्न मुद्रा में देख उससे कहने लगी—'एक बात कहूं अगर मान लो तो बहुत अच्छा हो, मेरा मन है कि माँ को अपने पास बुला लूं। पराये सहारे वे कब तक पड़ी रहेंगी कानपुर में। बड़ी दिक्कत होती होगी उन्हें। पता नहीं कैसे दिन काट रही होंगी, किसी दिन चले जाओ और उनको अपने साथ लिवा लाओ।'

जोखू हँस पड़ा और बलवन्ती के मुख पर दृष्टि टिका कर कहने लगा—'हाँ, है तो अच्छा ही, लेकिन जब तुम्हारी माँ राजी हो जांय, क्योंकि अभी परसों, यहाँ मैकू मामा एक जरूरी काम से आये थे। बाजार में मुलाकात हुई तो वे बता रहे थे........।'

'हाँ, क्या बता रहे थे मैकू मामा ?' बलवन्ती की जिज्ञासु प्रवृत्ति जाग उठी और वह एकटक पति की ओर निहारने लगी।

जोखू ने हरदेई की गतिविधि के विषय में जो कुछ मैकू के मुँह से सुना—कि वह अलग झोंपड़ी में रहती है। मैकू ने घर पर ही रहने को कहा था पर वह नहीं मानी। चार घरों का कूटना-पीसना करके गुजर करती हैं और जब उन्होंने मैकू मामा के घर में रहना पसन्द नहीं किया

तो मेरे साथ मुश्किल से आयेंगी। फिर भी मैं कल जाऊँगा और पूरी-पूरी कोशिश करूँगा कि वे कानपुर का मोह छोड़ कर मेरे साथ चली आयें।'

पति के मुँह से यह सुन कर बलवन्ती पुलकित हो उठी। बाहर सावन के मेघ मल्हार गा रहे थे। हल्के-हल्के झकोरों में हवा झूल रही थी और घने काले अन्धेरे में जुगनू सी बिजली की बत्तियाँ चमक रही थीं। भीतर मिट्टी के तेल की कुप्पी आले में रखी जल रही थी जिससे वह किराये की सील भरी कच्ची कोठरी दीप्त हो रही थी। बलवन्ती रोटियाँ सेंक रही थी, जोखू बैठा भोजन कर रहा था और दोनों में परस्पर प्रेम-पूर्ण वार्ता चल रही थी।

बलवन्ती का गोरा मुख उस पीले प्रकाश में स्वर्ण की भांति द्युतिमान हो रहा था। फिरोजी नग जड़ी हुई सोने की कील उसकी गोरी लम्बी सुभ्रा नाक में हीरे की कनी की तरह चमक रही थी, काली कन्नी की गुलाबी रंगी धोती उसके बदन पर निखरी पड़ रही थी हाथों में अब तक चढ़ाये की काली चूड़ियाँ और लाल लाख का जोड़ा झूल रहा था। उसकी मांग में सिन्दूर था, मस्तक पर बिन्दी और पैरों में पहने थी वह जालीदार चाँदी के छल्ले, जो सुहाग के प्रतीक थे। यह मानिन्द अप्सरा के सुन्दर प्रतीत हो रही थी।

जोखू था अत्यन्त साधारण लिबास में। गांठों तक ऊँची बंधी हुई मैली धोती वैसा ही मट मैला हो रहा हथकरघे का बुना हुआ मोटा कुर्त्ता। सिर पर बड़े-बड़े रूखे बाल, गाल पिचके और दाढ़ी बढ़ी हुई। सचमुच जोखू अपने शरीर के प्रति बहुत लापरवाह था। महीने में शायद दो-तीन बार वह दाढ़ी बनवाता था और बालों के कटने की नौबत तब आती, जब वे कनपटियों पर अपना पूरा-पूरा अधिकार जमा लेते थे। कपड़े जब से बलवन्ती आई थी, हर चौथे-पांचवें दिन साफ किया करती थी।

सीधा-सादा, सरल और संकुचित विचारधारा वाले व्यक्ति जोखू को फूल सी सुन्दर मृगनयनी बलवन्ती जैसी घरवाली मिल जायगी वह उसने कभी सपने में भी नहीं, सोचा था। जब वह बलवन्ती को देख लेता तो दिन भर की थकान भूल कर वह मुस्करा उठता। बहुत ही ख्याल रखते थे, दम्पत्ति परस्पर अपने अपने कर्तव्यों का घर की गाड़ी का जुआ दो कन्धों पर रखा हुआ था। फिर भला सुचारु रूप से क्यों न चलती ?

× × ×

रात बीतने के पहले ही आसमान में बादल दही जैसे फट कर रह गये और जमीन शीतलता और नमी का समावेश ले, सोंधी-सोंधी वास उगलने लगी। पौ फटते हीं जोखू उठा। बलवन्ती ने उसके हाथ पर पाँच रुपये रख दिये और उसको जाने के लिए आयोजित देख जोर देकर कहने—'जैसे भी हो मां को लाकर ही रहना। वे लोग दलील करेंगी, लेकिन तुम एक भी न सुनना। मैं राह देखूँगी रात तक लौट आना।'

इस पर जोखू को हंसी आ गई और वह चलते-चलते कहने लगा यकीन रखो बलवन्ती मैं हर हालत में मां को मनाकर ही रहूंगा। तुम देख लेना मैं अकेला नहीं उनको साथ लेकर लौटूंगा।'

× × ×

जब जोखू हरदेई के पास पहुंचा तो वह बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपने वालो की कुशल-क्षेम पूछने लगी, शिष्टाचार का सम्पादन कर, जब जोखू ने उसके सम्मुख अपना प्रस्ताव रखा तो वह एकदम चौंक उठी और कहने लगी कैसी अनहोनी बात करते हो जोखू भइया! भला लड़की का धन खा सकूंगी मैं ? जब तक हाथ पैर चलता है तब तक मैं कहीं नहीं जाऊंगी। जब थकेगा उसकी बात दूसरी है, मजबूरी में सब

चलता है, वह मेरी चिन्ता न करे।'

जोखू सास की बातें सुनकर अपनी ओर से जोर देता हुआ कहने लगा—'माँ! यह सब नहीं चलेगा। मुहल्ले वालों की क्या गरज पड़ी है। जो वे तुमको रोटियाँ सेक-सेक कर खिलाते रहेंगे! मेरी बात मानो, लखनऊ चलो। बलवन्ती को तुम समझा सकती हो, लेकिन तुम मुझको नहीं समझा सकती माँ! मैं तय करके आया हूं कि तुमको लेकर ही जाऊंगा।'

अब हरदेई की हिल्की भर आई और आर्द्र कण्ठ से कहने लगी—'जुग-जुग जियो मेरे लाल! तुम मेरी फिकर न करो, अब जिन्दगी रह ही कितनी गई, वह भी चलते फिरते कट जायेगी। जिस दिन यह नौबत आ जायेगी कि इस मुहल्ले में मुझे पनाह न मिले तो मैं अपने आप ही तुम्हारे पास पहुंच जाऊंगी! जोखू तुम मन छोटा न करो मैं ठीक कह रही हूं उस पर अमल करो। हाँ, एक बात तो भूल ही गई,—यह कह कर हरदेई पीछे घूमी और अपना टूटा हुआ लकड़ी का संदूक खोलने लगी उसमेंसे एक रंगीन रेशमी धोती निकालकर जोखू की ओर बढ़ाती हुई बोली व्याह में अपनी बालो को कोई अच्छा पहनावा नहीं दे पाई थी। यह बात मेरे मन में बहुत दिनों से खटक रही थी। अभी परसों ही भोलई से नौ रुपये की एक धोती मंगाई है, बालो से कहना यह मेरी निशानी है, इसको खूब सहेज कर रखे, मुझे बड़ी खुशी होगी।' यह कहते कहते हरदेई की आंखों में आंसू बहने लगे और उसके बूढ़े हाथ काँपने लगे।

जोखू ने धोती सास के हाथ से ले ली और किन्चित उदास होकर बोला—'यह तुमने क्या किया माँ शायद यह धोती खरीदने के लिए तुमने कई उपवास किये होंगे। अच्छा तो अब क्या कहती हो! अगर तुम मेरे साथ नहीं जाओगी तो तुम्हारी लड़की चुप नहीं बैठी रहेगी। वह कानपुर भागी आयेगी और तुम को अपने साथ ले जा कर रहेगी। कितना अच्छा होता, अगर यही धोती तुम अपने हाथों से अपनी बालो

को पहनाती ! मैं कहता हूं कि चलो मां मुझे खाली वापस न करो।'

लेकिन हरदेई रोती रही और रो-रो कर अपनी मजबूरी बयान करती रही। अपने सम्मुख उसने जोखू की एक बात नहीं लगने दी। जोखू प्रात: आठ बजे हरदेई के पास आया था। आते ही हरदेई ने उसे पड़ोस के मंगली हलवाई के यहां से पूड़ियाँ खरीद कर खिलाई थीं और अब जब उसके जाने की बेला हुई तो जल्दी से थोड़ी मिठाई और दही ले आई। उसको दामाद के सामने रख स्नेहसिक्त स्वर में कहने लगी—'जोखू, मेरे लाल ! तुम उदास न हो, लो मुंह मीठा कर लो, इस बुढ़िया का यही आशीर्वाद है कि खूब फलो-फलो तुम राजा बन कर रहो और मेरी बालो रानी।'

जोखू ने जलपान किया और साँझ का धुंधलका धरती पर उतरने के पूर्व ही स्टेशन पहुंच गया।

हरदेई झोंपड़ा में अकेली रह गई। इस समय उसका सिर गर्व से उन्नत हो रहा था। वह बलि-बलि जाती थी अपनी बालो और जोखू पर कि कितने सीधे और भोले हैं दोनों। मेरी बलवन्ती बड़ी भाग्य-शालिनी है। देवता जैसा पति मिला है। मेरे लिए इससे बढ़ कर और क्या खुशी होगी। जोखू मुझे कितना चाहता है जैसे मैं उसकी सगी मां होऊं !

इस तरह हरदेई पता नहीं क्या-क्या सोचती रही। आज उसके हर्ष का पारावार नहीं था। पेट काट-काटकर जो धोती मैंने बलवन्ती के लिए खरीदी थी, आज वह उस तक पहुंच जायेगी। बालो कितनी खुश होगी, मेरी निशानी पाकर ! क्या बतलाऊं अगर मेरी आंखें होतीं तो मैं एक बार बालो का लंहगा चुनरी पहिने दुलहिन बनी तो देख लेती भोलई कहता था कि 'पीली धोती है और लाल किनारा है। सगुन की चीज ऐसी ही होनी चाहिए, यही सोच कर मैं लाया हूं काकी ! कितना सुख होता है मां-बाप को जब वे अपनी औलाद को खिलौनों की तरह सजाने

हैं।' बलवन्ती ने चार पांच साल मुझे कमाई की रोटियां खिलाईं और चलते समय मैं उसे कुछ नहीं दे सकी इसका मुझे बड़ा अफसोस था। आज मेरी बहुत दिनों की साध पूरी हुई। ईश्वर अगर इसी समय मेरी आंखें मिच जायें तो तुम्हारी बहुत बड़ी मेहरबानी हो। मैं अन्धी होकर भी कभी आँखों के लिए नहीं तरसती जिसके लिए तरसती थी वह मिल गया अब अगर दुनिया मुझे अन्धी कहे, तो यह सरासर उसकी भूल है। अब मेरी दो आंखें हैं बलवन्ती और जोखू!

हरदेई विचारों में ऐसी तल्लीन थी कि न तो उसे तन की खबर थी और न दीन-दुनिया की! आसमान पर तारे छिटक आये थे और दिन भर की बदली का अन्त हो गया था। निकट ही रेलवे लाइन थी, मील जाती हुई एक मालगाड़ी उस पर से होकर गुजर रही थी इन्जन ने जोर की सीटी दी और हरदेई का बूढ़ा मन फूल की तरह खिल उठा कि गाड़ी छूट गई होगी और जोखू चला जा रहा होगा।

झिलमिलाते सितारे अम्बर में चांद की बलायें ले रहे थे और हरदेई का उछाह पुलक-पुलक कर रह जाता था। वह मन-ही-मन अपनी लड़की और दामाद को दुआएँ दे रही थी, बलाएं ले रही थी।

× × ×

बेटी को जब माँ की भेजी हुई सौगात मिली तो वह जितना प्रसन्न हुई उतना ही रोई। हँसी और रुदन दोनों का संगम बहुत ही महत्वपूर्ण था। माँ की निशानी छाती से लगा कर बलवन्ती का अन्तर मोद के आंसुओं से तर हो गया। पति के मुंह से माँ का उत्तर सुन कर वह चौंक सी उठी और आँसू पोंछती हुई व्यस्त स्वर में पूछने लगी—'क्या माँ को अब भी बाहर वालों पर भरोसा है। मैं कहती हूं कि उस मुहल्ले के लोगों में तनिक भी दया-माया नहीं है। मैकू मामा कब तक और कहां तक, उनकी देखभाल करेंगे—उन्हें बड़ी तकलीफ होगी मैं पहले से ही जानती थी कि वे आयेंगी नहीं। तुमने उन्हें अच्छी तरह शायद सम-

आया नहीं रुपये जोड़ लूं फिर अगले हफ्ते मैं चलूंगी। देखूं कैसे। हां आती हैं मेरे साथ ?'

बलवन्ती धारा प्रवाह बोलती जा रही थी और शांत-चित्त जोखू वह अनुभव कर रहा था कि लड़कियां माँ से कितना प्रेम रखती हैं। ठीक वैसे ही जैसे मां बेटी को बहुत ज्यादह चाहती है।

अब रात की चादर काली होकर भीग रही थी। धरती पर नन्हीं-नन्हीं बून्दों की बौछार हो रही थी। नगर का वातावरण सुप्तावस्था को प्राप्त हो रहा था। रात के सन्नाटे को यत्र-तत्र का मन्द जन तथा वाहन कोलाहल भंग कर रहा था। चांद बादलों की ओट में मुँह छिपाये बैठा था, इस अवसर पर तारे भी गमगीन हो बदलों में खो गये थे। जोखू और बलवन्ती दोनों में बातों का सिलसिला खूब जम रहा था, विषय था हरदेई का।

बलवन्ती को यह ध्यान ही नहीं रहा कि रात इतनी हो गई है और उसके पति ने अभी भोजन नहीं किया है। एकाएक उसे जब यह ख्याल आया तो वह मन-ही-मन कुछ झेंप-सी गई और सकुचाती हुई उससे कहने लगी--'अरे ! मैं तो भूल ही गई, चलो खाना खा लो, रात बहुत हो गई है।'

जोखू ने पत्नी की ओर देखा, वह मुस्करा रही थी। उसके भी मुख पर मन्द स्मित बिखर कर रह गई। वह कपड़े उतारने लगा और बलवन्ती चौके में जा उसके निमित्त भोजन परोसने लगी।

× × ×

दिन पर दिन बीतते गये। किन्तु बलवन्ती हरदेई के पास नहीं जा पाई। जब भी वह जाने का आयोजन करती कोई न कोई काम सामने आ जाता जिस के कारण रुकना पड़ जाता। पुरुषों की बात और है वे घर में रहते हुये भी एक प्रकार से घरेलू झंझटों से स्वतन्त्र ही रहते

हैं। लेकिन स्त्रियां कभी अपनी गृहस्थी से मुक्त नहीं हो पाती, इसीलिए उनके आयोजन आज और कल पर टलते रहते हैं। यही स्थिति बलवन्ती की भी थी। जब वह पूर्ण रूप से कानपुर जाने को तैयार होती तो पैसे नहीं इकट्ठे होते और जब पैसे जोड़ पाती तो कोई न कोई अड़ंगा सामने आ कर व्याघात बन जाता और वह उलझ जाती।

धीरे-धीरे इसी तरह वह बरसात बीत गई। जाड़ा आकर चला और गर्मी में जमीन तवा सी खूब तपी और उस पर पुनः सावन के मेघ बरसने लगे। बलवन्ती अब मां बनने जा रही थी। उसकी बड़ी चिन्ता थी कि सौर का काम अकेले उसका पति कैसे सम्भालेगा! इस बीच अगर माँ यहां होती, तो एक बहुत बड़ा सहारा हो जाता। यह सब सोचकर बलवन्ती ने एक दिन माँ के पास जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया और दूसरे दिन वह पति के साथ कानपुर पहुंच गई।

वहां हरदेई का यह हाल था कि मुहल्ले-वाले उसके प्रति उदार और जमालो उसकी कट्टर दुश्मन थी। वह उसके साथ दुर्व्यवहार करने से बाज नहीं आती। हरदेई के कच्चे घर की जगह पर मैकू का पक्का दोमंजिला मकान बन गया था। उसने वह घर किराये पर उठा दिया था और अब चमन गंज बहुत कम आता था। किराया भी अक्सर उसके लड़के ही वसूल करके ले जाया करते। अतः हरदेई की ओर से उसका ध्यान बिल्कुल हट सा गया था। पिछली बरसात में झोंपड़ी का फूस पानी से सड़ गया था और अब जब पानी बरसता तो मण्डप की तरह झोपड़ी टप-टप चूती थी। रुपये के अभाव में झोंपड़ी की मरम्मत अब उसके बूते की बात नहीं थी। खाने भर को वह बहुत मुश्किल से जुटा पाती थी। ऐसी स्थिति में जमालो उस पर लांछन लगाती कि बुढ़िया मैली-कुचैली रहती है। उसके पास सफाई का नाम नहीं है। न जाने उसका पीसा हुआ आटा सब लोग कैसे खा लेते हैं मुझे तो घिन लगती है।

आंखों से मजबूर हरदेई को दिन-रात यही चिन्ता रहती थी कि कहीं दूसरे के आगे हाथ न पसारना पड़े। गन्दगी और सफाई का प्रभाव मनुष्य पर बहुत जल्दी पड़ता है। सोने का आदमी हो और विष्ठा से भरा हो तो लोग उसकी ओर देखकर मुँह बिचका देंगे। और कुरूप से कुरूप व्यक्ति हो वह सादे लिवास में जो सुथरा हो, उपेक्षित कभी नहीं होता। वास्तव में पडोसी हरदेई से अब कुछ-कुछ घिनाने से लगे थे। उसकी धोती इतनी मैली थी कि मिट्टी से भी गई-बीती। उसके तार-तार हो रहे थे; किन्तु वह अपने लिए दूसरी धोती नहीं खरीद पाई। उसे पिसाई का काम भी अब बहुत कम मिलता था।

बलवन्ती और जोखू जिस समय झोंपड़ी के द्वार पर पहुंचे उस समय बदली की कड़ी धूप नीम पर पड़ रही थी। झोंपड़ी के छिद्रों द्वारा अन्दर प्रविष्ट हो, वह हरदेई के बदन पर यत्र-तत्र लोट रही थी। दोनों अन्दर आये। बलवन्ती माँ को जीर्णावस्था में देख फफक कर रो पड़ी और लपक कर उसके वक्ष से जा लग गई।

दोनों माँ-बेटी गले मिल कर रो रही थीं और झोंपड़ी के बाहर स्त्रियों तथा बच्चों की भीड सी लग गई थी। थोड़ी देर बाद जब बलवन्ती नई-पुरानी हो गई और दोनों माँ बेटी स्थिर चित्त होकर बैठीं तो बलवन्ती ने अपना प्रस्ताव माँ के सामने रखा। पास बैठे हुए जोखू ने पत्नी की बात का समर्थन किया तो हरदेई प्रसन्न होकर कहने लगी—'बड़ी खुशी की बात है कि मुझे नानी बनने का भगवान ने मौका दिया है, लेकिन बालो मुझ अन्धी से तुम सहारे की उम्मीद रखती हो। दुनिया में सारा खेल आंखों का है, मैं क्या काम में हाथ बटा पाऊँगी तुम्हारा! अभी जब तक हाथ पैर चलता है बेटी, तब तक मैं तुम लोगों को नहीं खलूँगी। उसके बाद का ईश्वर मालिक है। जब जैसा मौका आयेगा वैसा देखा जायेगा।'

बलवन्ती यह सुनकर बोल उठी—'मां तुम बेकार ही जिद करती

हो, मेरी समझ में नहीं आता कि तुम चैन से यहाँ रोटियां खा रही हो ? चलो, मैं इसी लिए आई हूं तुमको लेकर जाऊँगी !'

हरदेई अपने पोपले मुख पर हँसी लाकर कहने लगी—'मैं तो पहले भी कहती थी और वालो तू भी कहती थी कि बलवन्ती तुम्हारी लड़की नहीं लड़का है। मैं बहुत सुखी हूं वालो ! अब लो भगवान खबर ले लेता तो मैं तर जाती। मैं आऊँगी, जरूर आऊँगी जब मेरा नाती होगा, अभी ऐसे ही चलने दो वालो !'

बलवन्ती यह सुनकर पति की ओर उन्मुख हुई और कहने लगी—'देखा तुमने, मैं तो जानती थी कि माँ ऐसा ही कहेंगी।'

इस पर जोखू ने सास को बहुत समझाया। बलवन्ती ने बड़ी चिरौरी की लेकिन हरदेई खूबसूरती के साथ दोनों के प्रस्ताव टाल गई।

दिन ढले माँ से गले मिलकर बलवन्ती विदा हुई वह जिस समय अपने पति के साथ पथ पर जा रही थी तभी सामने से आ रहा था नेवाजी। वह अभी-अभी जेल से छूट कर घर जा रहा था। अठारह महीने की कैद, साढ़े तेरह महीने में ही समाप्त हो गई थी। उसने बलवन्ती को एक व्यक्ति के पीछे-पीछे जाते देखा। सुहागिनों जैसे शृंगार से उसने समझ जिया कि यह बलवन्ती का पति है; क्योंकि जेल में ही उसे इस बात का पता चल गया था कि हरदेई ने मकान बेचकर बलवन्ती का व्याह लखनऊ में कर दिया है।

बलवन्ती ने नेवाजी को नहीं देख पाया था। अपनी अस्त-व्यस्त दशा से शरमा कर वह उसके सामने से न निकलकर कतरा कर चला गया। वह सोच रहा था कि बुढ़िया कितनी स्यानी निकली तनिक भी देर नहीं लगी और उसने बलवन्ती के पैर पूज दिये। मैं मौका ही ढूंढ़ता रह गया कि हरदेई को अपने माफिक बना कर मैं बलवन्ती के

साथ व्याह कर लूंगा और जमालो को घर से बाहर करूंगा। लेकिन होनी मुझ पर सवार थी। न जमालो की नाक काटता और न सजा होती। अब हाथ मलने से क्या होता है, परिन्दा उड़ गया है वह वापस लौट कर आने का नहीं।

घर निकट आता जा रहा था और नेवाजी के मन में बलवन्ती का प्रश्न घूम रहा था कि जो जिसकी अमानत होती है उसी को मिलती है। शायद बलवन्ती मेरे नसीब में नहीं बदी थी।

***

सावन में बलवन्ती माँ के पास आई थी और क्वांर में उसने एक पुत्रीरत्न को जन्म दिया। जोखू भागा-भागा कानपुर आया और कुछ दिन के लिए सास को अपने साथ लिवा ले गया।

सावन से लेकर क्वांर तक हरदेई ने जी तोड़ मेहनत की थी जिसमें अपने लिए एक नई धोती खरीदी और अपने भावी नाती के लिए कुर्त्ता टोपी। वह लखनऊ पहुंची और बच्ची की छठी का दिन आया तो वही कुर्त्ता और टोपी उसको पहनाया फिर गोद मे ले उसको कलेजे से लगाती हुई जोखू और बलवन्ती से बोली—'मेरी बिटिया का नाम है सरसुता। जिस तरह इसने मेरी गोद भर दी है ऐसे ही जिन्दगी में खूब भरी-पूरी रहे। लम्बी उमर पाये और मेरी बालो की ही तरह सुशील बने।' हरदेई की आंखों से आनन्दाश्रु निकल पड़ और वह नन्हीं मुन्नी सरसुता को बार बार चमने लगी।

इस अवसर पर जोखू और बलवन्ती फूले नहीं समा रहे थे। जोखू को इस बात का गर्व था कि उसकी अकेली सूनी जिन्दगी में पहले बलवन्ती बसन्त बनकर आई अब सरसुता बहार बन कर सब पर छा गई है। सोने का घर महक उठा है, उसकी गृहस्थी बस गई है। उसका अनुमान था और अब तक का अनुभव था कि बिना गृहस्थी के आदमी अधूरा रहता है।

बलवन्ती भी माँ के आने से अपने मन में बहुत मगन थी। जहां तक होगा मैं और वे माँ को न जाने के लिये मनाकर ही मानेंगे।

शरद-ऋतु आ गई थी। खंजन घरों की छतों पर पेड़ों की टहनियों

पर और ऐसे ही धरती पर आकर फुदकने लगे थे। गुलाबी जाड़े का आविर्भाव हो चला था। इस ऋतु विपर्यय में सभी के मन हर्ष से आन्दोलित हो रहे थे। सड़ी गर्मी और वर्षा की किचकिच से ऊबे हुए नागरिक अब सन्तोष की साँस ले रहे थे। हरदेई कानपुर वापस जाना चाहती थी, लेकिन जोखू और बलवन्ती उसे नहीं जाने देते थे। वह इस मधुर बन्धन को स्वीकार करती हुई भी उसमें बंध नहीं पा रही थी। उसे लगता था कि दूर के ढोल सुहावने होते हैं, हालांकि मेरी बेटी और दामाद बहुत सीधे हैं वे मुझे न तो कभी आधी बात कहेंगे, और न उठ कर पानी ही पीने देंगे। मगर बेकार के लिए उनके सिर का बोझा क्यों बनूं ? और अपने अन्तर्द्वन्द्व को लेकर हरदेई अपने निश्चय पर दृढ़ रही और एक दिन रोती बिलखती बलवन्ती को छोड़कर वह कानपुर चली आई।

हरदेई के कानपुर आने पर मुहल्ले वालों की तरह नेवाजी भी चौंक कर रह गया। वह मन ही मन उस पर फिर खीझने लगा कि यह हरदेई कितनी चालाक है, बलवन्ती को परदेश में ब्याह दिया और आप यहाँ दूसरों के सिर अपनी जिम्मेदारी मढ़ने के लिए रह गई। दुनिया इतनी ईमानदार नहीं है कि बिना मतलब के दूसरों की भलाई करने लगे। कब तक मुहल्ले वाले साथ देंगे इस बुढ़िया का ? इसके जैसे कर्म हैं वैसे फल जरूर भोगेगी।

नेवाजी के ऐसे विचारों से हरदेई पूर्णतया निश्चिन्त थी उसकी जिन्दगी हँस रही थी और वह संसार से उठ जाने के लिए पूर्णतया प्रस्तुत थी।

× × ×

जेल से छूट कर नेवाजी जब घर आया तो जमालो उससे दस-पाँच दिन नहीं बोली। वह खाना बनाती थी और थाली परोस कर नेवाजी

के सामने रख देती। नेवाजी चुपचाप मौन साधे भोजन कर लेता और दिन भर घर में पड़ा-पड़ा खुर्राटे लेता रहता।

इस तरह जब एक हफ्ते से ऊपर हो गया और नेवाज़ी ने जमालो से बात नहीं की तो वह स्वयं एक दिन उससे कहने लगी—'अब जो कुछ हुआ है, उसको पीछे डालो और आगे की देखो। इतने दिन से बैठे-बैठे खा रही हूं कुछ काम धंधे की सोचो। लड़ाई-झगड़ा घर-घर होता है। सभी वखरियों में मिट्टी के चूल्हे हैं, क्या किसी के यहाँ सोने का भी होता है ? कारीगरों को बुलाओ और काम शुरू करो।'

यों तो नेवाजी ने तय कर रखा था कि अब वह जमालो से कभी बोलेगा नहीं। लेकिन पहली बात तो यह कि पति-पत्नी का झगड़ा कोई झगड़ा नहीं होता है और दूसरी बात ऐसी थी कि नेवाजी स्वार्थ-परायणता पर उतर आया था। वह जमालो के हाथ से पूंजी हस्तगत कर फिर उसे दुतकारने का आयोजन कर रहा था। छूटते ही वह रोनी सी सरत बना कर बोला—'कहती हो काम शुरू करो, कारीगरों को बुलाओ और साथ ही यह भी कहती जाती हो—'कि साल-डेढ़ साल से बैठे-बैठे खा रही हूं। सो, रुपये कहाँ हैं मेरे पास, जो काम शुरू करूं ?'

'मैं देती हूं रुपये, जाओ चमड़ा खरीद लाओ और कारीगरों से भी कह दो।' इतना कहकर जमालो ने जाकर अपना बक्स खोला और पचास रुपये के नोट लाकर नेवाजी को दे दिये।

दूसरे दिन से फिर पुरानी रफ़्तार में नेवाजी के घर में चप्पल का काम होने लगा। इस बीच अब नेवाज़ी और जमालो में खूब पटती थी। ऐसा लगता था कि इन दोनों में परस्पर कभी मतभेद हो ही नहीं सकता। दिन आगे बढ़ रहे थे और धीरे-धीरे जमालो की पूंजी नेवाजी खूबसूरती के साथ हड़पता जा रहा था। और एक दिन जमालो की स्थिति पतझड़ के वृक्ष सी हो गई।

अब सारी पूँजी नेवाजी के अधिकार में थी और जमालो उसकी बदली हुई निगाहें देख-देख कर सहम उठती थी।

जमालो में बुद्धि थी, विवेक था, लेकिन विवेक मूल्यांकन की कला में वह पारंगत नहीं थी। एक बात यह भी है कि पुरुष के द्वारा ही नारी छली और ठगी जाती है। यदि ऐसा न हो तो नारी को न तो कभी क्रोध आये न वह विद्रोह करे और न उबल कर ज्वार भाटा में बदल जाये। यही हाल जमालो का था। जहां पर कोई स्वत्व का प्रश्न आ जाता वहीं नेवाजी उसे बुरी तरह फटकार देता था। वह कारीगरों के सामने ही जब कभी-कभी बखिया उधेड़ने लगता तो जमालो सिर नीचे झुका लेती और शर्म से कट कर रह जाती। यदि उसमें आवेश आ जाता, खीझ समा जाती और गुस्सा चढ़ आता तो वह अट्ट-बट्ट ऊट पटांग और बहुत कड़वे बोल बोलने लगती तब नेवाजी उसको इस तरह पीटता था कि, उठ कर पानी नहीं पी पाती।

बहुत ही कठोर दिल वाला था नेवाजी ! व्यक्ति होते हुए भी वह व्यक्तिगत संस्कारों से सर्वथा वंचित था। मानो मनुष्य होने का अधिकारी ही नहीं। वह दुमुहा साँप है, दोनों मुँह से खाता है और दोनों से उगलता है। उल्टा भी चलता है और सीधा भी। मतलब निकलने पर सरल साधु मतलब हासिल होते ही भयानक विषधर। गरज पर गधे को भी बाप कहने वाला नेवाजी क्या कुछ नहीं कर सकता था। गुनाहों में हाथ रंगना और काले हो जाने पर उन में सफेदी पोतना, यह सब उसे खूब आता था।

एक दिन ऐसा हुआ, कि नेवाजी ने खूब महुआ की दारू पी, और फिर एक वेश्या के यहां गया। रात उसने वहीं बिता दी। सवेरे जब नशा उतरा तो वह अस्त-व्यस्त हालत में घर पहुंचा। उसको देखते ही जमालो लाल-पीली होकर बोली-- कहां रहे रात भर तुम ! बाजार से लौटकर

घर ही नहीं आये यह कौनसा तरीका है, बोलो, बताते क्यों नहीं कि कहाँ गये थे ?'

नेवाजी के मुँह से शराब की दुर्गन्ध अब तक आ रही थी। नशे का उतार था। सारी देह में मीठी-मीठी तपकन हो रही थी, दिमाग की नसें तो फुड़ियां सी दुख रही थीं। क्रोधावेश ने उन्हे गरम कर दिया था। समस्त शिराओं में रक्त तेजी से प्रवाहित होने लगा। उसने आँखें काढ़ कर जमालो की ओर देखा। फिर झपट कर दोनों हाथों से उसका गला दबाता हुआ किटकिटाकर बोला—'हरामजादी ऐसे खसमाना जनाती है, जैसे मेरी ब्याहता जोरू हो ? ओढ़री कहीं की, पहले तेरी नाक काटी तो सजा भुगता और अब गला ही घोंट कर रहूंगा, चाहे मुझे फांसी पर चढ़ना पड़ जाय।'

जमालो का दम घुटने लगा। नेवाजी के मुँह की दारू की भभक उसके नथुनों में समा रही थी। वह हाथों-पैरों से ऐसी फड़फड़ा रही थी मानो किसी पक्षी को बाज ने दबोच रखा हो। उसके मुँह से चीख भी नहीं निकल पा रही थी।

इतने में दो कारीगर आ गये। कारीगरों ने नेवाजी को छुड़ा कर अलग किया और जमालो कुछ क्षण तक जोर-जोर से हांफती रही। फिर जब कुछ तसल्ली मिली तो चिटख कर नेवाजी के पास पहुंची और हाथ नचा कर बोली—'अरे कलमुँहे कल रात को दारू पी थी ? गया होगा अपनी नानी-महतारियों के यहां। नासकाटा, अपनी करतूत नहीं देखता है और मुझे मारता है। कहाँ हैं कल की बिक्री के रुपये ?'

नेवाजी ने आंखें तरेरते हुये, जमालो की ओर देखा और खींच कर एक थप्पड़ मारता हुआ बोला—'अच्छा तो तू अब मुझसे हर चीज़ का हिसाब लेगी। मालूम होता है कयामत आगई है, तभी चींटी के पर जमने लगे हैं। तेरी ऐसी-तैसी, चल निकल मेरे घर से, जाकर और किसी का घर बसा।'

नेवाजी मुँह बड़बड़ा रहा था और हाथों तथा लातों से जमालो की मरम्मत करता जा रहा था। कारीगर जब तक बचायें तब तक उसने जमालो को तेजी के साथ पटक दिया। आँगन के कोने में पत्थर की बड़ी सी सिल रखी थी। जमालो का सिर उससे टकराया, सिर से खून की धारा बह चली।

नेवाजी खून देखकर सहम गया, वह बाहर जाने लगा। तब तक दो कारीगर और आगये थे उन्होंने उसे रोक लिया। पहले वाले दोनों कारीगर जमालो की सुश्रुषा में लगे थे और इन दोनों आगन्तुकों को नेवाजी जाकर काम वितरित करने लगा।

***

स्त्री का रूप उसका सबसे बड़ा शत्रु है और सबसे बड़ा मित्र भी। कभी-कभी रूप का सौदा उसके लिये इतना महँगा पड़ जाता है कि उसे स्वयं प्राणों की बाजी लगा देनी पड़ती है। धूर्त व्यक्तियों की नीच प्रवृत्तियां अन्धेरे में खूब पनपती हैं और इसीलिए दिन के उजाले में भी पाप अर्जित करते वे तनिक भी नहीं हिचकते। गरीबी का रूप अमीर वर्ग के हाथों का एक खिलौना मात्र होता है। खिलौने खेले जाते हैं, टूट जाते हैं फिर नये आ जाते हैं। गरीब ईमान पर जीता है और अमीर अपनी दौलत पर। दौलत का जहर बड़ा तीखा होता है। हलक तक पहुंचते ही वह ईमान को डस लेता है, फिर जिसकी लाठी होती है भैंस उसी के पल्ले पड़ती है। बलवन्ती सुन्दरता की खान थी। उस पर कामी कुटिलों की क्रूर और वक्र दृष्टि पड़-पड कर रह जाती। वे उस फूल को जोखू से छीन लेना चाहते थे। इसके लिए कितने ही प्रयोग हुए। साम, दाम और दण्ड भेद सभी तरह से काम लिया गया; लेकिन बलवन्ती तनिक भी नहीं विचलित हुई। उसमें साहस था और अन्यायियों के प्रति विरोध करने और उनसे लोहा लेने की क्षमता।

वैभव की चेरी विलास प्रिय नगरी लखनऊ में बलवन्ती अपने पति के साथ पाण्डेयगंज मुहल्ले में रहती थीं। वहाँ छोटे वर्ग से लेकर उच्च वर्ग के लोगों का भी समुदाय था, जिसमें भले भी थे और बुरे भी। मनचले युवक बलवन्ती को देखकर सिनेमा का कोई गीत छेड़ देते, कोई छींटाकशी करके कहता कि चिड़िया अच्छी उड़ा लाया है, जोखू और उन वृद्धों की यह स्थिति थी जो सफेद हो जाने पर भी अभी रंगीन थे

वे मीठी चुटकियाँ लेते जिससे बलवन्ती जल भुन कर खाक हो जाती थी। इसके अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे भी थे जो अमावस की रात में डाका न डाल कर दिन दहाड़े बल प्रयोग के लिये सन्नद्ध रहते थे।

दिन चलते गये और गरीब की जोरू के सम्मुख उतार-चढ़ाव आते गये। यद्यपि बलवन्ती जोखू से कुछ नहीं कहती थी; मगर वह सूप का उलारा हुआ बच्चा नहीं था, सब कुछ समझता था कि एक चुप सैकड़ों बलाएं टालती है। मौका टाल जाना, सुनी अनसुनी कर जाना और मन को मार लेना शरीफ की शराफत है।

एक दिन ऐसा आया, मार्च का महीना था। हल्की-हल्की धूप बाहर छोटे से पतले चबूतरे पर बिछ रही थी। कुहासा जा रहा था और किरणें चमक रहीं थी। जोखू थोड़ा सा गुड़ खा ऊपर से एक लोटा पानी चढ़ा सिर पर झल्ली रख स्टेशन की ओर चला गया था। बलवन्ती अपनी बच्ची को गोद में लिए चबूतरे पर बैठी धूप का सेवन कर रही थी। सहसा उसके सामने गिलट का एक रुपया आकर गिरा और झनझना कर रह गया। वह चौंकी, दृष्टि रुपये पर गई फिर इधर और उधर उसके बाद वह ऊपर देखने लगी। सामने दोमंजिले पर खिड़की में खड़े सुशील बाबू मुस्करा रहे थे। ये जाति के बंगाली थे। सेक्रेटेरियट में काम करते थे। आज इतवार था, इसलिए छुट्टी मना रहे थे। वे लम्बा वेतन पाते थे। ऊँचे पद पर नियुक्त होने के कारण उनकी अच्छी-अच्छी जगह पहुंच थी। रसिया ढंग के बहुत ही रसीली तबियत के आदमी थे। इनका सिद्धान्त था कि आदमी को फल खाना चाहिये, पेड़ नहीं गिनना चाहिए। इसी लिए अधेड़ होने पर भी वे अपनी कामुक प्रवृत्ति को दबा नहीं पाये थे। गत डेढ़ दो वर्षों से जब से बलवन्ती यहां आकर रही थी वह उनका केन्द्र बिन्दु बन गई थी। ऐसा था कि वे किसी काम को जल्दी कभी नहीं करते। कछुआ चाल चल कर ही अपना शिकार पकड़ते थे। आज वे घर में अकेले थे। परिवार के लोग गोमती स्नान को

गये हुए थे तभी उन्होंने रुपया नीचे फेंक कर बलवन्ती को अपने पास बुलाने का षड्यन्त्र रचा।

बलवन्ती की दृष्टि ऊपर उठते ही मुकर्जी साहब मुस्करा कर अशुद्ध बोली में बोले--'ये रुपया हमारा है, दे जाओ, घर में कोई बच्चा लोग नहीं है। नीचे झांक रहा था तो गिर पड़ा, दे जा बाई!'

नीचे उस समय कोई नहीं था। बच्चे और बूढ़े तो काफी धूप निकल आने पर ही बाहर निकलते थे। बलवन्ती जितनी साहसी थी उतनी ही सरल और उदार भी। वह हमेशा अपने से बड़े का लिहाज करती थी। सने सोचा कि यह बंगाली बाबू बड़े आदमी हैं, रुपया मैं ही दे आऊँ।'

बलवन्ती ने पुत्री को चादर बिछा कर चबूतरे पर लिटा दिया और सुशील मुकर्जी के पास रुपया लेकर बात की बात में पहुंच गई।

उस समय सुशील बाबू का चेहरा काम से उत्तेजित हो रहा था। उनके बदन के रोंगटे खड़े थे, हृदय धक-धक कर रहा था और एक अजीब प्रकार का असन्तुलन उनमें समा रहा था, जिससे गात में मन्द-मन्द कम्पन्न हो रहा था। रुपया आगे बढ़ाते ही उन्होंने बलवन्ती का हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींचते हुए बोले--'आजा, मुझसे डरती है क्या! जोखू अच्छा आदमी नहीं है। वह तुमको अच्छा कपड़ा नहीं ला सकता, अच्छा खिला नहीं सकता। हम तुमको खूब रुपया देगा, मेरी......'

यह कहते-कहते बलवन्ती की ओर बढ़ आया और चाहा कि उसे बाजुओं में भर ले इतने में बलवन्ती उस पर सिहनी सी टूटी पड़ी। उसने इतनी जोर का थप्पड़ मारा कि बंगाली बाबू तिलमिला कर रह गये। अब वे बलात उसको पीछे ढकेल खुले किवाड़ बन्द्र करने के लिए आगे बढ़े तब तक बलवन्ती ने पीतल का गुलदस्ता उठा कर उनके सिर

पर दे मारा। पीछे खोपड़ी से खून के फौवारे छूटने लगे और वे चीख मार कर वहीं पर गिर पड़े।

खून देख कर बलवन्ती सहमी नहीं। वह निर्भयता पूर्वक चुपचाप नीचे चली आई। बच्ची रो रही थी। उसने उसको उठाकर छाती से लगा लिया और जल्दी-जल्दी अपनी कोठरी में जा, अन्दर से कुण्डी लगा ली।

× × ×

रात को बलवन्ती ने जोखू को सारी घटना बताई तो वह हतोत्साह होकर बोला—'हमें बड़े आदमियों के मुंह नहीं आना चाहिये बालो। वे पैसे वाले हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं। तुमने और किसी को तो नहीं बतलाया?'

बलवन्ती क्रोध भरी बैठी थी। उसके मुंह से जवाब में एक भी शब्द नहीं निकला, केवल न द्योतक सिर हिला कर रह गई।

जोखू फिर कहने लगा—'आग के खेल अमीरों के लिए ही हैं, तुमने बहुत बुरा किया बालो जो मुकर्जी बाबू पर हाथ उठाया।'

छूटते ही बलवन्ती बोल उठी—'हां मैंने तो जरूर बुरा किया। उस बेईमान के बच्चे को कुछ नहीं कहोगे, जो मेरी इज्जत पर डाका डालना चाहता था। अपनी लाज बचाने के लिए अभी तो मैंने उसका सिर ही फोड़ा है, अगर उसकी हरकत और आगे बढ़ती तो मैं उसकी जान ले लेती।'

बलवन्ती को उत्तेजित होते देख जोखू उसे शान्तिपूर्वक समझाता हुआ बोला—'हां तुम्हारा भी कहना ठीक है। लेकिन मैं सोचता हूं कि झगड़े और झंझट की जगह पर क्यों रहा जाय! मैं कल ही किसी दूसरे मुहल्ले में घर तलाश कर लूंगा, क्योंकि यहां पर रहना अब खतरे से खाली नहीं है।'

यह सुनते ही बलवन्ती उग्र होकर बोल उठी—'तो चिलुओं के डर से तुम कथरी छोड़ देने को तैयार हो गये। मैं कहती हूं कि आज की दुनिया में ऐसे नीचों की कमी नहीं, जहाँ भी जाकर रहोगे, यह गन्दगी जरूर मिलेगी। क्या कर लेगा वह बंगाली मेरा? तुम क्यों डरते हो, डरना तो मुझे चाहिए! सो मैं अपनी आबरू बचाने के लिए भगवान से भी लड़ सकती हूं?'

देर तक दम्पत्ति में सुशील बाबू का ही प्रसंग चलता रहा। बलवन्ती का क्रोध शान्त होने को नहीं आ रहा था। अतः वह उबलती और उबलती ही चली जाती थी। जोखू धीरे-धीरे उसे समझा रहा था। रात आगे बढ़ रही थी और नींद के निमंत्रण को मानों दम्पत्ति ने अस्वीकार सा कर दिया था। इसी लिए वह उनसे रूठी थी और अन्तर्द्वन्द दौड़-भाग लगा रहे थे।

जिसके शरीर में शक्ति होती है, वह प्रतिद्वन्दी का डटकर मुकाबला करता है और जो शक्ति तथा साहस दोनों से शून्य होते हैं, वे प्रतिशोध के लिये चौर्य-कार्य और चोर-मार्ग का अनुसरण करते हैं। सुशीलचन्द्र मुखोपाध्याय भी इसी श्रेणी के व्यक्ति थे। उनमें विद्या थी, बुद्धि थी और थे वे श्री के अधिकारी भी; किन्तु सोते में गला काट लेना और बारह वर्ष के बाद भी मौका मिल जाने पर अपना दांव ले लेना, यह उनकी कुटिल नीति थी।

उस दिन घर वालों के सम्मुख वे इस बहाने का आश्रय ले गये कि ऊपर आलमारी से मैं किताब निकाल रहा था तो एक चूहा उसमें से निकल कर जल्दी से ऊपर भागा। उसकी भाग-दौड़ में पीतल का गुलदस्ता सिर पर गिर गया और चोट लग गई। लगभग दो हफ्ते उनके सिर पर पट्टी बँधी रही, जिसे बलवन्ती भी देखती थी और जोखू भी।

जोखू यद्यपि किसी दूसरे मुहल्ले में जाकर रहने का निश्चय कर चुका था। लेकिन एक तो जल्दी कोई मकान उपलब्ध नहीं हो रहा था और दूसरे उसके सम्मुख कोई प्रश्न भी नहीं था, क्योंकि बलवन्ती दुश्मन से लोहा लेना और लोहे के चने चबाना खूब अच्छी तरह से जानती थी। वह घर छोड़ने के पक्ष में नहीं थी। उसका कहना था, कि इसी कोठरी में मैं ब्याह कर आई, इसी में फली-फूली. मैं इस कोठरी को नहीं छोड़ूँगी।

माघ बीत गया था। फागुन और चैत भी गुजर गये। बैशाख की कड़ी गर्मी लखनऊ नगर को खूब गरम कर रही थी। बलवन्ती और

जोखू दोनों निश्चिन्त हो गये थे कि अब सुशील बाबू उनका कुछ भी नुकसान नहीं करेंगे, क्योंकि गलती उनकी थी और अब दिन भी काफी हो गये हैं। बात-गई-बीती हो गई है।

लेकिन काला असली नाग, जो फुफकार कर उसी समय अपने प्रतिद्वन्दी को डस लेता है, सुशील मुकर्जी ऐसे आदमी नहीं थे। वे थे पानी के साँप, जिसको लोग मछली समझ कर पकड़ लेते हैं, और साँप धोखा देकर उनको डस लेता है। बलवन्ती और जोखू दोनों अनजान थे और उनके लिये एक बहुत बड़े गुप्त षड्यन्त्र की सृष्टि मुकर्जी बाबू कर रहे थे।

गर्मी के कारण जोखू रात को बाहर निकटवर्ती पार्क में सोया करता था और बलवन्ती अपनी दुधमुँही बच्ची के साथ कोठरी में ही, रात बिताती थी। एक रात जोखू भद्दर नींद में, आधी धोती बिछाये पार्क की हरी-हरी दूब पर सो रहा था। सहसा उसके कन्धे पर एक डंडा पड़ा और वह चौंक कर, उठ बैठा। उसने देखा एक तीन बिल्ले का चीफ और तीन कांस्टेबिल उसको घेरे खड़े हैं। उनमें से एक कह रहा था—'क्यों बच्चू! इस तरह क्या बच जाओगे? अभी-अभी टाट पट्टी मुहल्ले में बैठे नकब लगा रहे थे हम लोगों के गश्त की सीटी सुनी तो सरिया, मोमबत्ती और माचिस वहीं छोड़ कर भाग खड़े हुये, और यहाँ आकर ऐसे पड़ रहे जैसे बहुत देर से सो रहे हो?'

जोखू इतना भयभीत हो गया था कि वह थर-थर कांपने लगा और उन लोगों से कुछ भी नहीं बोल सका। वह अपनी सफाई देना चाहता था। लेकिन पुलिस का रोब उसके सिर पर आतंक बन कर छा गया था जिससे शब्द हलक तक आकर वापस लौट जाते थे। वह भौंचक्का हो सिपाहियों की ओर देख रहा था। इतने में एक ने कस कर बूट की ठोकर उसकी पीठ पर मारी। वह मुँह के बल गिर पड़ा और सिपाही कहने लगा—'चल साले, अभी बन्द करता हूं, हवालात में। फिर कल

जब सात लाख की हवेली में पहुंचोगे तो मालूम पड़ जायेगा कि सेंध कैसे लगाई जाती है।'

अभी जोख सम्हल भी नहीं पाया था कि बेरहमी के साथ चीफ कांस्टेबिल ने उसकी पीठ पर एक डंडा जमा दिया और जिस तरह चील चूहे को दबोच लेती है वैसे ही अपने फौलाद सदृश पंजे से उसने जोखू की गर्दन पर का कुर्ता पकड़ कर ऊपर उठा लिया और घसीट कर ले चलने लगा।

इस समय रात के ढाई बज रहे थे। आकाश में शुक्ल पक्ष का चाँद भी हँस रहा था। आगे-आगे चीफ कांस्टेबिल जोखू को बकरे की तरह हलाल करता हुआ चल रहा था और पीछे के सिपाही भी मौका पाकर बीच-बीच में उसकी डंडों व हाथों से खबर ले लेते थे। वह रो-रोकर कह रहा था—'हजूर मेरे माई बाप हैं मैं कहीं नकब लगाने नहीं गया। यहीं तो रहता हूं पाण्डे गंज में चाहे किसी से पूछ लीजिए।'

इस पर पुलिस वालों के मंजे हुये पुराने जुमले इस्तेमाल होने लगे। एक ने कहा—'सफाई देने वाला आदमी, पक्का चोर होता है। वहाँ सेंध नहीं लगा रहे थे बच्चू, तो क्या, अपने बाप की 'गया, कर रहे थे?'

जोखू ने जवाब देने की कोशिश की। उसकी हिम्मत कांप रही थी और भय से सारा बदन ही नहीं अन्तर तक थर्रा रहा था। उसने जैसे ही कुछ कहने के लिये मुँह खोला कि चीफ का डंडा उसके मुँह पर पड़ा। वह आँखें मींच और चीख मार कर रह गया। उसका मसूढ़ा अन्दर से फट गया था, जिससे वह खून की कुल्लियाँ करने लगा।

अब पुलिस चौकी करीब आ गई थी। जोखू मुर्दा सी देह लिये, रोता और आंसू बहाता चौकी में पहुंचा सीखचों में बन्द होने के पहले ही उस पर इतनी मार पड़ी कि पिटते-पिटते वह अधमरा हो गया।

उसकी आंखें मुंद गई और थोड़ी देर के लिए वह अचेतनावस्था को प्राप्त हो गया।

रात्रि के सृष्टि प्रदत्त मानवों की सुरक्षा के लिए, जाग्रत प्रहरी अपने कार्य में पूर्णतया व्यस्त थे। झल्ली झंकार रही थी झींगुर शहनाई वजा रहे थे और सन्नाटे का आलम मन्द हवा के झूले पर चढ़ पैंग बढ़ाते हुये सांय-सांय कर रहा था। दूसरी ओर मनुष्य के रूप में मनुष्यों के सुरक्षा के प्रहरी परस्पर हँस-बोल और खिलखिला रहे थे कि अच्छा है, वुद्धू था वुद्धू, ऐसे मुलजिम ही तो मुकदमों को कामयाव वनाते हैं।

× × ×

रात जग गई थी और सवेरे ने उसके मुख पर से अन्धेरी चादर हटा दी थी, क्योंकि जव तक चाँद हंसता रहा और फूल झरते रहे तव तक काली चादर गोरी बनी रही और अव कहीं रात की मर्यादा भंग न हो जाय, अतः अपने साथ अश्वों पर सवार सूरज प्राची में आकर लाल अंगारा सा चमकने लगा। उसकी निकट की लाली दूरस्थ प्रदेशों में पीतिमा और स्वर्णिमा लिये अपनी वादी फैला रही थी। सुनहली किरणें धरती को चूम रही थीं। और वलवन्ती की देह पर भी किवाड़ों व दराजों से जाकर किरणें अठखेलियां कर रही थीं।

सवेरा हो गया सूरज भी निकल आया। पर तव भी जोखू न आया तो वलवन्ती चिन्तित हो उठी। सरसुता जाग गई थी और भूखी रो रही थी। वलवन्ती ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह एकदम आगे बढ़ी मन कह रहा था कि जाकर उनको जगा दूं, शायद सवेरे ठन्डी-ठन्डी हवा चलती है, इसलिए आज आंख नहीं खुल पाई। किन्तु सरसुता अपनी करुणा से उसमें स्नेह और ममता भरती गई वह पीछे लौटी और रोती
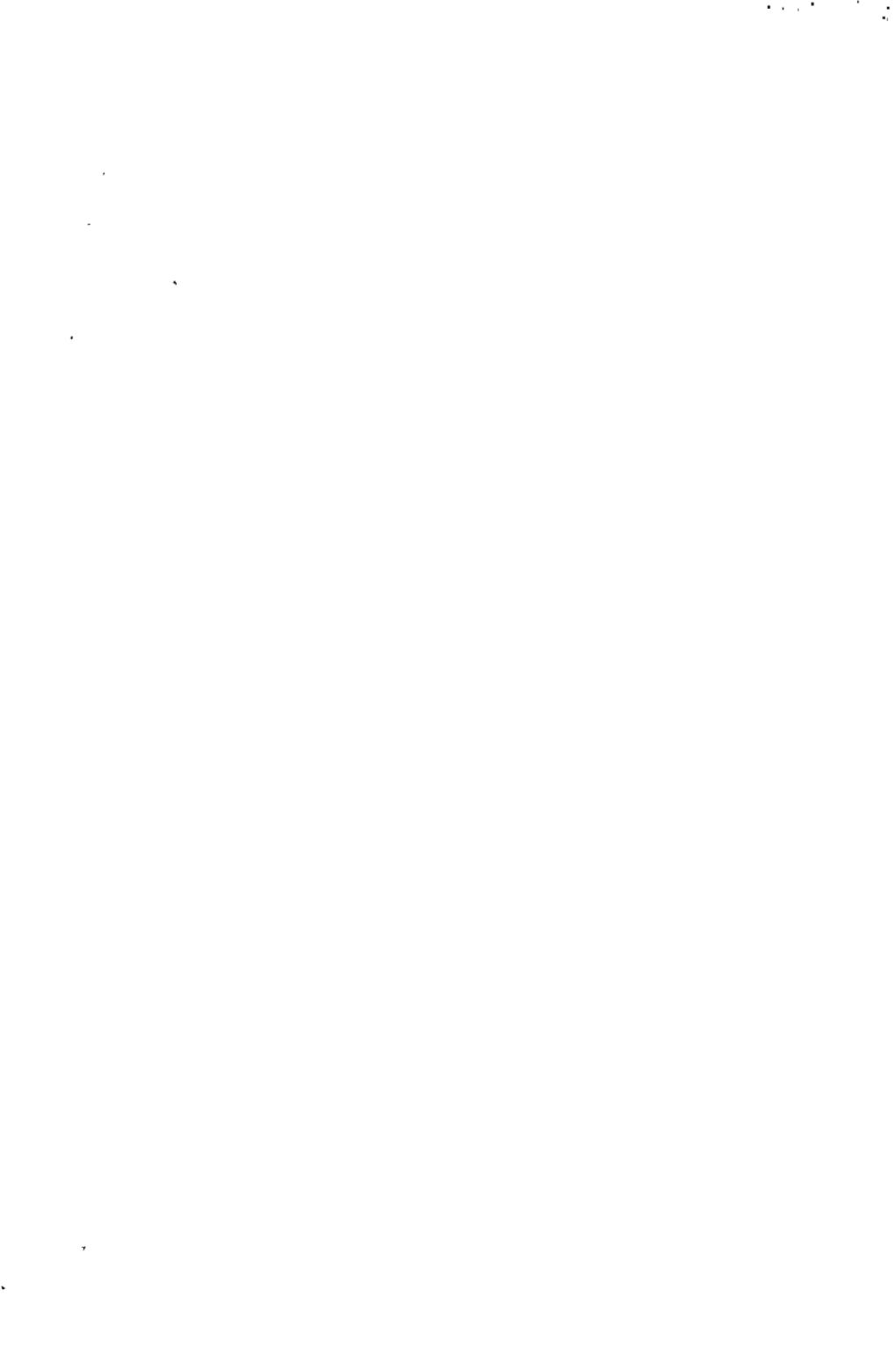
को मुआ पकड़ नहीं पाया होगा, तभी बेकसूर को बलि का बकरा बना दिया।'

बुढ़िया बोली—'क्या जानूं, कहाँ बन्द है? सारे मुहल्ले में चख चख मची है वही मैंने भी सुना है।'

बलवन्ती ने बुढ़िया के पास अब समय व्यर्थ गवाँना उचित नहीं समझा। वह मुहल्ले की पुलिस-चौकी की ओर चल दी। वहाँ पता चला कि अहियागंज की पुलिस ने जोखू को गिरफ्तार किया था और अब उसका चालान जेल भेज दिया गया है।

बलवन्ती के पैरों के नीचे से जमीन निकल गई। आज बलवन्ती ने प्रातः से मुँह में अन्न का एक दाना नहीं डाला था प्यास लगने पर सड़कों पर लगे नलों से पानी पीकर गला सींचती रही।

रात हो गई थी। बलवन्ती बुत बनी बैठी थी। सरसुता रो-रोकर घर भर रही थी। बलवन्ती को ऐसा लग रहा था कि उसके शरीर से कोई प्राण निकाल ले गया है और मिट्टी की काया लिये बैठी है।

× × ×

बलवन्ती माँ के पास कानपुर आई फिर दोनों माँ बेटी मैकू के घर गईं। दुनियादारी के नाम पर मैकू बलवन्ती के साथ एक दिन के लिए लखनऊ गया। उसे जल्दी थी घर वापस लौट जाने की। अतः जल्दी-जल्दी में काम बिगड़ गया। उसकी जमानत मंजूर नहीं हुई। जोखू हवालात में ही सड़ता रहा।

ऐसे ही जब मुकदमा चलने लगा तो मैकू ने आकर थोड़ी सी सहानुभूति और दिखलाई। उसने एक सस्ता-मद्दा वकील कर दिया और मुकदमे की सुनवाई आरम्भ हो गई।

बलवन्ती दिन भर चप्पलें सीती थी और पति के छूट जाने के लिये, मन ही मन ईश्वर से विनय करती रहती थी। वह तारीख वाले

दिन कचहरी जाती। जोखू को कुछ रुपया धेली पुलिस वालों की निगाह बचाकर दे आती थी, जो जेल में उसके बीड़ी-तम्बाकू के लिये काम देता था।

मुकदमा चलता रहा। पाँसे उलटे पड़े। जोखू को धारा एक सौ नौ के अन्तर्गत एक साल की कड़ी सजा का हुक्म मिला। सुनते ही बलवन्ती बुक फाड़ कर रो पड़ी। और जोखू को तो एकदम फिट आ गया। वह कटे वृक्ष की भांति धम्म से अदालत में गिर पड़ा। पांच बज रहे थे मैजिस्ट्रेट उठकर चला गया। सिपाही उस जिन्दा लाश को पानी के छींटे मार उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगे।

× × ×

दुख का एक दिन एक युग होता है और सुख की घड़ियाँ बहुत थोड़े में ही समाप्त हो जाती हैं। पूरा एक साल किस तरह बीतेगा—बलवन्ती यह सोच-सोच कर हैरान रहती थी। उसने निश्चय कर रखा था कि वह पति की राह देखेगी, जी तोड़कर मेहनत करेगी पेट भर खायेगी और बचायेगी भी। इस तरह अपने निश्चय को उसने कार्यान्वित भी कर रखा था। नित्य वह बाजार जाकर काम ले आती और पूरा करके दे आती।

भादों में जोखू को सजा हुई थी और राम-राम करके बलवन्ती ने तीन महीने काट दिये थे। अब अगहन चल रहा था दिन में सुरसुरी हवा चलती और रात को पाला गिरता। धूप इतनी शर्मीली हो गई थी, जैसे ससुराल में आई हो।

बलवन्ती जब प्रातः चबूतरे पर बैठ कर लड़की को बहलाती कभी-कभी स्वयं उसके साथ बच्ची बन जाती, और इसी तरह अपने कार्य में व्यस्त रहती। यह सब उसकी गतिविधि सुशील मुखर्जी अपनी पैनी दृष्टि से निहारा करते और सोचा करते कि शायद अब दुःख की मार

से यह पसीज जाये। इसलिये एक दिन वे रात के अंधेरे में अवसर पाकर बलवन्ती की कोठरी में पहुंच गये।

कोठरी में मिट्टी के तेल की ढिबरी का पीला प्रकाश फैल रहा था। बलवन्ती बैठी थपकियां दे-दे कर सरसुता को सुला रही थी। वह इस प्रतीक्षा में थी कि किसी तरह बच्ची सो जाय और वह लपक कर बाहर के नल से एक बाल्टी पानी ले आये। क्योंकि जूठे बरतन धोने को रखे थे। इसीलिए किवाड़े उढ़के थे और तभी सुशीलचन्द्र सहज ही अन्दर प्रविष्ट हो आये।

बलवन्ती उनको देखते ही चौंक कर उठ खड़ी हुई, और क्रोध से दाँत पीसती हुई बोली—'इतनी रात को यहां क्या करने आया है, कमीना। चल निकल! बाहर जाकर मुँह काला कर वरना मैं तेरे दाँत तोड़ दूँगी। उस दिन तो सिर फोड़ा था और आज कोई हरकत की तो चेहरा बिगाड़ कर रख दूँगी। समझ क्या रखा है मुझ को? मैं चमार की बच्ची हूं लेकिन तेरी तरह कमीनी नहीं।'

बलवन्ती कहती जा रही थी और बंगाली बाबू खड़े-खड़े मुस्करा रहे थे। उन्होंने जेब से कुछ रुपये निकाले और उनको बलवन्ती की ओर बढ़ा कर बोले—'बस, अब चुप भी रह बाई! ले, रुपये रख मेरी बात मानेगी, तो मजा करेगी मजा!' यह कहकर वे उन्मत्त हो बलवन्ती की ओर बढ़े। बलवन्ती दो कदम पीछे हट गई और कमर पर दोनों हाथ बांध व्यंग्यात्मक लहजे में कहने लगी—'बिल्कुल ठीक कहते हो बंगाली बाबू! एक बात तो सुनो मैं तो खैर मजा करूँगी ही, लेकिन तुम तो पहले उसका स्वाद चख लो!'

बात समाप्त होने के साथ ही वह भूखी बाघिन सी मुखर्जी साहब पर टूट पड़ी और तड़ातड़ कई थप्पड़ लगाकर उनका मुँह लाल कर दिया। यही नहीं, मुकर्जी साहब ने जब अपने बचाव की कोशिश की और बलवन्ती के साथ बल का प्रयोग करने लगे तो उसने उनको दांतों से खूब काटा, नाखूनों से बकोटा। यह नौबत ला दी कि, उनका चेहरा

लोहू लुहान हो गया और वे खिसिया कर यह कहते हुए, बाहर निकल गये कि 'तुम बहुत बदमाश औरत है। हम तुमको मुहल्ले से निकलवाकर ही मानेगा। दुनिया भर का गुण्डा, लोफर लोग तेरे पास आता है, और तुम हमारी बेइज्जती करता है। अच्छा जाता तो हूं, लेकिन अब तुम्हें चैन से नहीं बैठने देगा हम।'

बंगाली चला गया और बलवन्ती जल्दी से कुंडी लगा रोती हुई सरसुता को चुप कराने लगी। इस समय वह जोर-जोर से हाँफ रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि यह सारी कोठरी नाच रही है, उसका सिर घूम रहा है शायद वह कुछ ही देर में पागल हो जायेगी।

— ० —

... ...

अगहन बीता और पूस भी पयान कर गया। माघ की कड़ी सर्दी में बलवन्ती ठिठुरती हुई जाड़ा व्यतीत करने लगी। घर में सिर्फ एक रजाई थी, जिसमें पैबन्दों का बाजार लग रहा था और इस वर्ष तो उसकी यह स्थिति थी कि जगह-जगह से रुई हट गई थी, अस्तर झिरी-झिरी हो गया था और फर्द भी कई जगह से फट गयी थी। बलवन्ती को अपने शरीर की तनिक भी चिन्ता नहीं थी वह सरसुता को कलेजे से लगाये सिकुड़ी पड़ी रहती और इसी तरह रात व्यतीत हो जाती।

जोखू लखनऊ की जेल में था। अतः हर इतवार बलवन्ती उससे जाकर मिल आती और गिन-गिन करके दिन काटती रहती कि वह जेल से कब छूटेगा।

इस तरह समय व्यतीत हो रहा था और बलवन्ती इस बात को बिल्कुल भूल ही गई थी कि अगहन में जब बंगाली उसके घर आया था तो चलते चलते उसे चुनौती दे गया था। उसके लिए उसे इसलिए चिन्ता नहीं थी, क्योंकि उसकी धारणा थी कि कामी आदमियों में बुद्धि होती है और न बल। जो गरजते हैं वे बरसते नहीं, किन्तु भाग्य इस समय उसके विपरीत चल रहा था वह सोचती कुछ और थी, होने कुछ और जा रहा था।

एक रात को जब पहला पहर चल रहा था दिन भर के काम-काज से थक कर बलवन्ती चूल्हे के पास बैठी रोटियां सेंक रही थी, सुरसुता बैठी खेल रही थी, कोठरी में धुआं भर रहा था। अत. बलवन्ती ने किवाड़े खोल दिये ताकि धुआं निकलता रहे। इतने में एक हट्टा-कट्टा तहमद बांधे हुए नौजवान मुसलमान कोठरी में घुस आया, आते ही

उसने तेजी के साथ किवाड़े भेड़ दिये और फिर आगे बढ़ एक कपड़े से बलवन्ती का मुँह बांधने लगा। शायद उसका यह उपक्रम बलवन्ती को वहां से उठा ले जाने के लिए था।

बलवन्ती चिड़िया की तरह फड़फड़ाने लगी। कहां वह नर-राक्षस और कहां गरीबी और दुख से सताई हुई दुखियारी बलवन्ती। उसे समझने में क्षण की देर नहीं लगी कि यह सब बंगाली की ही करतूत है। पहले उसने उस युवक से पीछा छुड़ाने की बहुत कोशिश की। दोनों हाथों से उसे खूब नोच-खकोटा; लेकिन जब सफलता नहीं मिली तो वह बहुत घबड़ा गई। चिल्ला सकती नहीं थी, क्योंकि उसके मुँह पर काबू तो मुसलमान पहले ही पा चुका था। विवश बलवन्ती अपनी रक्षा के लिए अधीर हो उठी। घबड़ाहट में उसका हाथ उस चैले पर पड़ गया जो चूल्हे में जल रहा था। उसने जलता हुआ चेला उठाकर उस युवक के मुँह में लगा दिया। उसकी थोड़ी बढ़ी हुई दाढ़ी जलने लगी यह बलवन्ती को छोड़ अपना मुँह सहलाने लगा। बलवन्ती को मौका मिल गया वह पलक मारते ही सरसुता को उठा कर बाहर भाग गई और जोर-जोर से चिल्लाने लगी—'देखो मेरे घर में चोर घुसा है।' पड़ोसी दौड़ पड़े और सिर पर पैर रखकर वह युवक भाग गया।

देर तक बलवन्ती को स्त्रियां और पुरुष घेरे रहे। वही चर्चा चलती रही। फिर लोग अपने-अपने घरों में पहुँचे, तो काना-फूसी होने लगी कि अरे सोचने की बात है, जोखू तो जेल में बन्द है, आखिर इस बलवन्ती का खर्चा कैसे चलता है? दुनिया को दिखाने के लिए वह काम करती है। राम-राम ऐसी नीच हो गई कि जात-कुजात का भी ख्याल नहीं रखा! इस मुसलमान से इसकी पुरानी आशनाई होगी। आज जब भेद खुल गया, तो सती सावित्री बनने के लिए हल्ला मचा दिया और उसका मुंह जला दिया।

और बलवन्ती की यह हालत थी कि वह सोच रही थी कि यह

इस घर और इस मुहल्ले में रहना खतरे से खाली नहीं है। कहीं अलग दूसरे मुहल्ले में कोई कोठरी किराये पर लूं उससे तो अच्छा यह होगा कि मां के पास ही क्यों न चली जाऊँ ? अब यहां गुजारा नहीं होने का !

उस रात बलवन्ती भूखी ही लेट रही। चौका बर्तन और रोटियां सभी छूत हो गई थीं। उसने रोटियां ले जाकर बाहर गाय को खिला दीं और बरतनों में थोड़ी-थोड़ी आग डालकर अगिया लेने के बाद मांज धोकर रख दिये। वह लेटी जरूर रही लेकिन नींद उसके पास फटकी तक नहीं। वह सोच रही थी कि मेरे कानपुर जाने से मां को भी सहारा हो जायेगा। कम से कम उन्हें बनी हुई रोटियाँ तो मिलेंगी रह गई उनसे (जोख से) मिलने की बात उसके लिये ऐसा है कि महीने में एक बार लखनऊ आकर मिल जाया करूंगी। यहाँ तो इज्जत बचाने के लाले पड़ रहे हैं। कहीं कुछ नेक-बद हो गया तो जात बिरादरी वाले जाति से निकाल कर ही दम लेंगे।

रात भर बलवन्ती ऐसी ही विचारधाराओं में बहती रही। उसे भय था कि सबेरा होने पर कोई कुछ पूछेगा कोई कुछ कहेगा। सब जगह चख-चख मचेगी ऐसी हालत में कोई भी मुझे अच्छी निगाह से नहीं देखेगा। मैं लाख मुँह में सोना डाल हूं; मगर बहुरंगी दुनियां में बहुत रग हैं, सभी तरह के लोग हैं, मैं किसको भला कहूंगी और किसको बुरा। अलख सुबह जो गाड़ी कानपुर जाती है मुझे उसी से चल देना चाहिए। है ही क्या घर में, एक बक्सा है, कपड़े और बरतन गठरी में आ जायेंगे। मौका मिल रहा है तो मुझे ढील नहीं करनी चाहिए। क्या पता अपनी इस चाल में चूक जाने पर बगाली सबेरे मुझ पर कोई नया इल्जाम लगा दे जो पुलिस और थाने की नौबत आ जाय इससे बेहतर यही है, जो मैंने सोचा है।

सबेरे मुहल्ले के लोगों ने देखा कि बलवन्ती की कोठरी खाली पड़ी

है उसमें न तो वह है और न उसका सामान ही। लोग मन माने रूप से उसकी टीका टिप्पणी करने लगे। कोई कुछ कहता था और कोई कुछ; किन्तु बलवन्ती अपने निश्चयानुसार ट्रेन में बैठी अपनी मां के पास जा रही थी। सवेरे की सफेदी फूटने के पहले ही उसने घर छोड़ दिया था और अब ट्रेन आधा सफर तय कर चुकी थी, तब कहीं जाकर सूरज की पहली किरण फूट पाई।

× × ×

हरदेई बलवन्ती की कहानी सुनकर दंग रह गई। वह कहने लगी— अब लखनऊ में रहने की कोई जरूरत नहीं है लालो! काम करके जैसे वहां पेट भरती हो वही यहां भी कर सकती है। जोखू जेल से आ जाय तो मैं उसे भी यही सलाह दूंगी कि अब लखनऊ छोड़ दे, और यहीं कोई घर किराये पर ले ले।

बलवन्ती मां का समर्थन करती हुई बोल उठी—'हां मां, मैंने भी यही तय किया है अब हम लोगों का रहना, लखनऊ में किसी सूरत से भी नहीं हो सकता। अब यहीं रहूंगी, अभी तो कई महीने हैं, वे जब तक छूट कर नहीं आ जाते हैं तब तक इसी झोपड़ी में निर्वाह करूंगी। थोड़ा सा फेर बंध जाय, फिर यहीं मोहल्ले में ही कोई कोठरी ले लूंगी, क्योंकि छोटी बच्ची साथ है, झोंपड़ी में निर्वाह कब तक होगा?'

इस तरह दोनों मां-बेटी परस्पर अपना-अपना मन भरती रही। दिन बीता, रात आई, और हरदेई ने चक्की छेड़ दी। तब बलवन्ती उठकर मां के पास पहुंची और चक्की का खूंटा पकड़ कर पीसने लगी। वह आग्रह करके कहने लगी 'हटो मां, यह काम अब तुम्हारे बूते का नहीं है, मैं पीसूंगी।'

हरदेई ने चक्की रोक दी और लाड भरे स्वर मे कहने लगी। [illegible] [illegible] चक्की नहीं चलेगी लालो, भला और भी कभी कुछ पीसा है?' [illegible]

पड़ जायेंगे हाथों में ! मेरा महरबा (अभ्यास) है तुम जाओ सोओ, क्यों नींद खराब करोगी ?'

इस पर बलवन्ती कहने लगी—'मां यह बहुत मोटा काम है काफी मेहनत चाहता है और मजदूरी भी इसमें न के बराबर मिलती है। कल से यह धन्धा बन्द कर दो। मैं काम करूंगी। फिर तुमको बुढ़ापे में मेहनत करने की क्या-जरूरत है !'

'अरे तू यह क्या कहती है बालो ? हाथ पैर चलते हैं तो मेहनत करती हूं, जब पौरुष घटेगा तो अपने आप ही चक्की छूट जायेगी। मैं......।'

अभी हरदेई इतना ही कह पाई थी कि बालो बोल उठी—'नहीं माँ। अब मैं तुमको कमा कर खिलाऊँगी ! इस मामले में तुम्हारी एक भी नहीं सुनूंगी। कल से मैं बाजार जाऊँगी, बाहर के व्यापारियों का काम करूंगी और एक दिन वह आयेगा जब यह झोपड़ी छोड़कर मैं तुम्हें किराये के घर में ले जाकर रखूंगी। जिद न करो जाओ आराम करो, मैं अभी निपटाये देती हूं थोड़े ही से तो दिउल हैं !' यह कहने के साथ बलवन्ती ने चक्की रोक दी।

हरदेई ने जब देखा कि बलवन्ती अपनी जिद पर उतर आई है वह किसी तरह नहीं मानेगी तो उसने दूसरी युक्ति से काम लिया। वह बोली—'अच्छा फिर ऐसा करो हम मां बेटी दोनों पीसेंगी। रह गई और बातों के लिए उसके लिये जब जैसा मौका आयेगा देखा जायेगा।'

बलवन्ती सहमत हो गई। घुर-घुर चक्की चल रही थी दोनों माँ-बेटी राग अलापती हुई बेसन पीस रही थीं। रात की शहनाई चक्की की धुन में और बलवन्ती तथा हरदेई के स्वरों के सम्मुख मात खा रही थी। ऐसा लगता था कि मनुष्य ही महान है, धरती और वनस्पति का महत्व उसी पर निर्भर है। जड़ और चेतन में होड़ लग रही थी, पाला

बरस रहा था, और कटीली तीर सी हवा कांप रही थी। धीरे-धीरे रात के रथ के पहिये अपनी मंजिल तय कर रहे थे।

× × ×

होली जल गई थी। इस बीच बलवन्ती लखनऊ जेल में जाकर दो बार जोखू से भी मिल आई और छोड़ दी थी उसने मां के आवास की वह झोंपड़ी भी। नेवाजी के घर के पीछे उसने एक किराये की कोठरी ली थी और दोनों मां-बेटी सुख पूर्वक उसमें अपने दिन व्यतीत कर रही थीं।

नित्य प्रातः बलवन्ती चमड़ा बाजार जाती। वहां का दस्तूर यह था कि खरी मजदूरी और चोखा काम। चार पांच घंटे की मेहनत में बालो रुपया डेढ़ रुपया कमा लेती थी और इतना उसके पारिवारिक व्यय के लिये पर्याप्त था।

हरदेई हमेशा गर्व से अपना सिर उन्नत किये रहती क्योंकि लोग कहते हैं कि लडकी जात आदमी के सिर का बहुत बड़ा बोझ होती है, लेकिन मैं तो जानती हूं 'मेरी बालो लड़की नहीं लड़का है, सिर का बोझ नहीं वह मेरे गले का हार है। ऐसी औलाद पाकर कौन नहीं फूला समायेगा? मेरी बालो हीरा है हीरा! अब मैं लखनऊ कभी नहीं जाने दूंगी। जोखू भी आदमी नहीं देवता है, बहुत ही सीधा और बहुत ही भोला। दोनों लडकी दामाद को मैं अपने पास से नहीं हटाऊंगी। किसी तरह जल्दी जल्दी दिन बीत जायें, जोखू छूट आये, फिर हमारी गृहस्थी बहुत ही खुशहाल हो जायेगी।

और ऐसा ही दृढ़ निश्चय था बलवन्ती का। अब वह मां को अकेले कहीं नहीं भटकने देगी। बुढ़ापे में उनकी सेवा करेगी, बड़ों की सेवा ही छोटों के लिये मेवा है। वह जोखू को भी समझा देगी। दोनों प्राणी कानपुर में ही रहकर मेहनत मजदूरी करेंगे। यहां चार आदमी अपना कहने वाले हैं, लखनऊ में कौन बैठा है वहां जाकर ---- ---- ---- तरह नहीं हो सकता।

हरदेई का काम था दिन भर सरसुता के साथ अपना मन बहलाये रहना और बच्चे भी बूढ़ों के हाथ में पहुंच फिर उनकी गोद से उतरने का नाम नहीं लेते हैं। सरसुता अपनी नानी से खूब हिल गई थी। नानी और नातिन को हँसते खेलते देख बलवन्ती का कलेजा हाथ भर का हो जाता था। वह ऐसी स्थिति में कुछ क्षणों के लिए आत्म-सुख में विभोर हो जाती। यह सौभाग्य हर एक को नहीं मिलता है जो मुझे मिल रहा है। मां प्रसन्न हैं, बच्ची खुशहाल है, ऐसा लगता है कि घर का कोना-कोना हँस रहा है।

जोखू यों ही दुबला-पतला व्यक्ति था उस पर अचानक आगई इस विपत्ति की मार ने उसे मृतप्राय सा कर दिया। जीवन्मृत जोखू के वश का नहीं था कि जेल की चक्की पीसे, सर्रा खींचे, मूँज कूटे और बान बटे। मेहनत इतनी कड़ी थी और खाने को साधारण रोटी दाल कभी कभी रूखी सूखी सब्जी और भुने हुये चने मिल जाते थे। उसका शरीर सूख कर कांटा हो गया था। पत्नी और पुत्री की चिन्ता ने उसका सारा खून सुखा दिया था। ऐसा लगता था कि यह पीले मुख वाला जोखू दिक का बीमार है और उसकी बीमारी की यह तीसरी मंजिल है।

लेकिन इससे क्या? नृशंस जमादार जोखू के साथ तनिक भी मुलाहिजा नहीं करते। यदि कहीं वह काम से थक कर सुस्ताने के लिए बैठ जाता तो उस पर जमादारों के बूट और डण्डों की मार पड़ती थी। उच्च अधिकारियों को क्या पता कि छोटी-छोटी तनख्वाहें पाने वाले जमादार किसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। जेल के जमादार उन कैदियों से डरते हैं जो हट्टे कट्टे और तन्दुरुस्त होते हैं। वे सेर के सामने सवा सेर बन कर रहते हैं और दुर्बल कमजोरों की तो कोई बिसात ही नहीं। वे मशीन की तरह काम में जुटे रहते हैं अवकाश काम समाप्त करने पर ही मिलता है। इसके पूर्व वे एक मिनट के लिये भी सांस नहीं ले सकते। ऐसे में सर्दी-गर्मी के संधि काल में एक दिन एकाएक जोखू का पेट खराब हो गया। उसे टट्टियां आने लगीं और वह क्रम शुरू होकर फिर बन्द नहीं हुआ।

हरदेई का काम था दिन भर सरसुता के साथ अपना मन बहला
रहना और बच्चे भी बूढ़ों के हाथ में पहुंच फिर उनकी गोद से उतर
का नाम नहीं लेते हैं। सरसुता अपनी नानी से खूब हिल गई थी
नानी और नातिन को हँसते खेलते देख बलवन्ती का कलेजा हाथ भर
का हो जाता था। वह ऐसी स्थिति में कुछ क्षणों के लिए आत्म-सुख
में विभोर हो जाती। यह सौभाग्य हर एक को नहीं मिलता है जो मुझे
मिल रहा है। मां प्रसन्न हैं, बच्ची खुशहाल है, ऐसा लगता है कि घर का
कोना-कोना हँस रहा है।

❀❀❀

जोखू यों ही दुबला-पतला व्यक्ति था उस पर अचानक आगई इस विपत्ति की मार ने उसे मृतप्राय सा कर दिया। जीवन्मृत जोखू के बस का नहीं था कि जेल की चक्की पीसे, गर्रा खींचे, मूँज कूटे और बान बटे। मेहनत इतनी कड़ी थी और खाने को साधारण रोटी दाल कभी कभी रूखी सूखी सब्जी और भुने हुये चने मिल जाते थे। उसका शरीर सूख कर कांटा हो गया था। पत्नी और पुत्री की चिन्ता ने उसका सारा खून सुखा दिया था। ऐसा लगता था कि यह पीले मुख वाला जोखू दिक का बीमार है और उसकी बीमारी की यह तीसरी मंजिल है।

लेकिन इससे क्या? नृशंस जमादार जोखू के साथ तनिक भी मुलाहिजा नहीं करते। यदि कहीं वह काम से थक कर सुस्ताने के लिए बैठ जाता तो उस पर जमादारों के बूट और डण्डों की मार पड़ती थी। उच्च अधिकारियों को क्या पता कि छोटी-छोटी तनख्वाहें पाने वाले जमादार किसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। जेल के जमादार उन कैदियों से डरते हैं जो हट्टे कट्टे और तन्दुरुस्त होते हैं। वे सेर के सामने सवा सेर बन कर रहते हैं और दुर्बल कमजोरों की तो कोई बिसात ही नहीं। वे मशीन की तरह काम में जुटे रहते हैं अवकाश काम समाप्त करने पर ही मिलता है। इसके पूर्व वे एक मिनट के लिये भी सांस नहीं ले सकते। ऐसे में सर्दी-गर्मी के संधि काल में एक दिन एकाएक जोखू का पेट खराब हो गया। उसे टट्टियां आने लगीं और वह शुरू होकर फिर बन्द नहीं हुआ।

कई दिन तक जोखू ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उसने न किसी से कहा और न सुना। वह बराबर टट्टी जाता था। जमादार लोग यह देख रहे थे, लेकिन उन्हें तो अपने काम से काम था दुनिया भर की फालतू बातों से क्या मतलब !

जोखू का दुर्बल शरीर दिन पर दिन कमजोर होता चला गया। दो दिन से उसने रोटी खाना भी बन्द कर दिया था ताकि टट्टियाँ आनी बन्द हो जायँ। किन्तु इस पर भी उसे कड़ी मेहनत का काम करना पड़ता था। एक दिन गर्रा खींचते-खींचते वह मुँह के बल गिर पड़ा। उसे चक्कर आ गया। वह बेहोश हो गया। वह मुँह के बल गिरा था, अतः नाक में करारी चोट आ गई थी। जेल के अस्पताल में उसको ले जाकर जमादारों ने छोड़ दिया। वहां ज़ख्म पर पट्टी बाँध दी गई और पीने के लिए दवा दे दी गई।

जोखू जिस समय होश में आया तब उसका गला प्यास से सूख रहा था। पैरों की पिण्डलिया दर्द से फटी जा रही थीं और सिर तेजी से ऐसा धमक रहा था मानों उस पर हथौड़े की चोटें पड़ रही हों। धीरे से कराह कर उसने पानी माँगा कम्पाउन्डर ने पानी का जग उसके पास रख दिया और स्वयं दूसरे कार्यों में व्यस्त हो गया।

जिस जोखू को केवल गला सींचने के लिये इस समय एक घूंट से अधिक पानी नहीं पीना चाहिये था वह गिलास पर गिलास गले से नीचे उतारता चला गया। दस्त में प्यास खूब लगती है। उस समय का पिया हुआ पानी गरल का काम करता है।

जोखू को बुखार हो गया। पीड़ा के कारण सिर की नसें चटखती जा रही थीं और अब टट्टियों के साथ उसे पानी की उल्टियां भी होने लगीं। अफारा हो गया था, पेट पानी से भर गया था। यद्यपि अस्पताल के डाक्टर ने ग्लूकोज और सलाइन के कई इन्जेक्शन लगाये, लेकिन जोखू व्याधिमुक्त नहीं हो सका। तीन दिन तक उसका यही क्रम चलता

रहा और चौथे दिन यह स्थिति आ गई कि उसका जी बहुत घबड़ाया। ज्वर बिल्कुल उतर गया था। उसे एक बहुत बड़ा दस्त हुआ जो काफी बदबूदार था शायद उसका मल फट गया था। उसने पानी-पानी की रट लगा दी। डाक्टर इन्जेक्शन देने लगा; किन्तु जोखू चल बसा। शायद अधिक चिन्ता और घबड़ाहट से उसकी हृदय गति रुक गई थी।

जोखू का मृत शरीर मुर्दाखाने में रख दिया गया था। वह एक सफेद चादर से ढका था जिस पर चैत की बढ़ती हुई मक्खियां भिनभिना रही थीं। कदाचित वे उसकी मौत का मातम मानने आई थीं, क्योंकि बलवन्ती तक अभी खबर नहीं पहुँची थी।

× × ×

कई दिन बाद जब बलवन्ती को जोखू की मृत्यु का समाचार मिला और उसे पति का शव देखने को नहीं मिला तो बलवन्ती रोकर रह गई। वह छाती पीट रही और सिर धुन रही थी और हरदई तो एकदम जैसे बौखला सी गई थी उसने अपना सिर दीवाल पर दे मारा और रो-रो कर कहने लगी—'हाय ! मेरी बालो के नसीब में सुख नहीं बदा था। जोखू ! तुम कहां चले गये मेरे लाल, मैं बैठी रही और तुम दुनिया से उठ गये ! कलियुग की बलिहारी है, मेरी बालो के पैरों का महावर भी मैला नहीं हुआ, और तुम कजा कर गये।'

जेल से खबर उस पते पर आई थी जहां जोखू रहता था। किन्तु उस कोठरी में दूसरा किरायेदार आकर आबाद हो गया था। बलवन्ती का किसी को ठीक-ठीक पता नहीं था। अतः लाश की अन्त्येष्टि सरकारी कर्मचारियों द्वारा ही सम्पन्न की गई। बिरादरी वालों को पता हो गया था और उसमें बलवन्ती की पड़ोसिन उस बुढ़िया ने भी सुना था जो उसकी बड़ी हिमायती थी और जिसने जोखू की गिरफ्तारी का समाचार बलवन्ती को सुनाया था। उससे नहीं रहा गया। वह जानती थी कि बलवन्ती अपनी मां के पास चली गई है। उसने पड़ोसी से एक

पोस्टकार्ड लिखवाकर बलवन्ती के पास खबर भेज दी।

बलवन्ती के मुँह से कोई भी शब्द नहीं निकल रहे थे। वह सरसुता को छाती से लगाये बिलख-बिलख कर रो रही थी। कोठरी पड़ोस की स्त्रियों से भर रही थी। मातम पुरसी में बिरादरी के सभी लोग हरदेई के घर आये थे। सभी उसे समझा रहे और सान्त्वना दे रहे थे।

सवेरे ही डाक से बलवन्ती को बुढ़िया का भेजा हुआ पत्र मिला था और अब ठीक दोपहर थी। उसने माँ से परामर्श किया कि आज ही उसे लखनऊ जाना चाहिए। यह पता करना तो जरूरी है ही कि आखिर उनकी (जोखू) मौत कैसे हुई ? अभी पिछले पखवारे में मैं गई थी तो बिल्कुल ठीक थे फिर एकाएक यह गाज कैसे गिर पड़ी !

हरदेई एकदम बावली हो रही थी। वह हां और न कुछ भी नहीं कह सकी और बलवन्ती जाने की तैयारी करने लगी।

संयोगवश उसी समय मैकू भी वहां आ पहुँचा। आज पाँच तारीख थी, वह अपने घर का किराया वसूल करने आया था। तब तक खबर लगी कि जेल में जोखू की मौत हो गई है, अभी-अभी बलवन्ती के पास चिट्ठी आई है। वह भागा हुआ हरदेई के घर आया और उसी शाम को बलवन्ती उसके साथ लखनऊ के लिए रवाना हो गई।

× × ×

ट्रेन में बैठी बलवन्ती सोच रही थी कि कहीं ऐसा तो नहीं बुढ़िया का बहाना करके उस मुए सुशील बंगाली ने यह जाली चिट्ठी लिख कर मुझको डलवा दी हो, जिससे मैं हैरान होऊँ और भटकती हुई लखनऊ जाऊँ, जिससे वह मुझको अपने जाल में फँसाने की कोशिश करे। लेकिन मुझे कोई डर नहीं है, जैसा तब था वैसा ही अब है। फिर अब तो मैं और भी निडर हूं, क्योंकि मैकू मामा मेरे साथ है, मजाल पड़ी है कोई छू भी जाय !

किन्तु लखनऊ पहुंचने पर बलवन्ती का यह भ्रम दूर हो गया। मंकू सबसे पहले उस बुढ़िया के पास पहुंचा। बुढ़िया ने जो वास्तविकता थी, स्पष्ट बयान कर दी।

इसके बाद उस रात मंकू और बलवन्ती बुढ़िया के यहां ही ठहरे। प्रातः दोनों जेल गये। वहां मालूम हुआ कि जोगू को दस्त आ रहे थे, उसी में उसकी मृत्यु हुई है। बलवन्ती धाड़ मारकर रो पड़ी। बड़ी मुश्किल से उसे सान्त्वना और आश्वासन देता हुआ मंकू स्टेशन तक लाया। रास्ते भर उसके आंसू नहीं रुके और जब वह पहुंची तो मां से लिपट कर खूब रोई। हरदेई भी उसके रुदन में योगदान करती हुई फूट-फूट कर रोने लगी।

फिर घर में स्त्रियां जुट आईं। जिज्ञासावश चारों ओर से प्रश्न होने लगे कि क्या बीमार था जोगू? एकाएक यह अनहोनी कैसे हो गई, आदि-आदि।

बलवन्ती रो रही थी और हरदेई रोना राग अलापती हुई दोनों हाथ फैला, कभी छाती पीटती, कभी सिर धुनती हुई सब बयान कर रही थी कि जोगू को जबरदस्ती मार डाला हत्यारे जेल वालों ने। इस प्रसंग से उसने जो कुछ बलवन्ती और मंकू के मुंह से सुना था वही सब कह रही थी।

सांझ का धुंधलका धरती पर छा रहा था। कोठरी में काफी अन्धेरा भर गया था। पड़ोस की स्त्रियां अपने-अपने घर जाने के लिए तैयार हो रही थीं। लेकिन पुरानी परम्परा है कि जब कोई किसी के घर सान्ध्य वेला में जाता है तो चिराग जलने के पूर्व कभी प्रस्थान नहीं करता। यदि कोई इसके विपरीत चलता है तो यह एक बहुत बड़ा अपशगुन माना जाता है। किन्तु सहसा बलवन्ती का ध्यान इस ओर गया। बड़े-बड़े आंसू बहाती हुई वह उठी, ढिबरी जलाकर आले में रख दी। स्त्रियां जाने लगीं और बलवन्ती तेजी के साथ किवाड़ बन्द

करने के लिए लपकी, मगर दुर्भाग्य वह किवाड़े भेड़ भी नहीं पाई और दिया बुझ गया ।

बलवन्ती दोनों हाथों से माथा पकड़ कर रह गई। वह वहीं बैठ गई और उसका मन कराह कर पुकार उठा कि बदनसीब को अन्धेरा ही अन्धेरा मिलता है। फिर मुझे उजाला कैसे मिल सकता है? यहाँ पर मुर्दनी छा रही है, और मैं चाहती हूं कि दिया जलता रहे! भला भाग्य से भी कोई खेल सकता है?

इस तरह बलवन्ती का अन्तर्मन दारुण पीड़ा से विलख रहा था, और घुटनों के बल चल कर धीरे-धीरे सरसुता उसके पास आ

यदि मनुष्य के सम्मुख किसी एक ही वस्तु का स्थायित्व बना रहे तो उसकी गति स्थगित होकर रह जाय। क्रम सृष्टि का सबसे पहला नियम है, उसी में दुख-सुख रोग-दोष और उन्नति-अवनति सभी कुछ बँधे हैं! गोल दुनिया घूमती जाती है और एक के बाद एक दृश्य सामने आता जाता है। इसी तरह निरंतर अनवरत रूप से दृश्य बदलते रहते है सृष्टि पलती रहती है और मनुष्य जीता रहता है। परिवर्तन सृष्टि का शृंगार है वही, मनुष्य की भी गति-विधि है। धीरे-धीरे बलवन्ती के आँसू बहने बन्द हो गये थे। वह माँ, बच्ची और काम-काज में अपने को भटकाये रहती। समय व्यतीत हो रहा था। धीरे-धीरे अब सावन आने लगा था।

बरसात के मौसम में सभी प्रकार के व्यापार एक तरह से अवरुद्ध ही हो जाते हैं, जिसको देखो वही झींकता फिरता है, कि मेरा अमुक काम इस समय बिल्कुल नही चल रहा है। चमड़ा बाजार भी काफी मन्दा चल रहा था। व्यापारियों की माल पर पूरी लागत भी नहीं वसूल हो पाती थी घाटा उठाकर कोई काम कब तक किया जा सकता है? यही कारण था, कि बलवन्ती को अब बहुत कम काम मिलता बेकारी बढ़ रही थी, लोग टिड्डी की तरह काम के लिए मंडरा रहे थे। होता यह था कि उसको एक दिन काम मिलता तो दो दिन बेकार बैठना पड़ता। इससे धीरे धीरे उसकी गृहस्थी का बंधा हुआ फेर बिगड़ने लगा। हरदेई को चिन्ता हुई उसने पुनः चक्की चलाने की ठानी। लेकिन बलवन्ती सरासर उसका विरोध करती चली गई।

सारे मुहल्ले में यह चर्चा थी कि बलवन्ती बहुत ही कच्ची उम्र में विधवा हुई है। इसकी नाव पार कैसे लगेगी? इसी दृष्टिकोण को

लेकर यदा कदा हरदेई के सन्मुख पड़ोसिनों के सुझाव आते, जिनका तात्पर्य यह होता कि जमाने पर विश्वास न करो बालो की मां ! यह किसी का साथी नहीं है। कच्चा धागा और जवानी की उम्र दोनों ही कभी टूट सकते है, कभी फिसल सकते हैं ! बलवन्ती को किसी की चूड़ियाँ पहना दो इसी में भलाई है, कहीं कुछ नेक-बद हो गया तो किसके मुँह में समाओगी ?

हरदेई इन बातों को सुनती और मनन करती, किन्तु नजीजा कुछ भी नहीं निकल पाता था। सबसे पहला भय उसके सम्मुख यह था कि बलवन्ती फौलाद की बनी है वह इस बात को कभी मंजूर ही नहीं करेगी। जो खुद कमा कर खा सकता है वह कभी किसी का मुँह नहीं ताकता। इस बारे में उससे कुछ न कहना ही ठीक है।

लेकिन परिस्थितियाँ गिरगिट की तरह अपना रंग बदलने लगीं और हरदेई इस सोच में पड़ गई कि आदमी का बल होता है पैसा और औरत का बल होता है उसका पति। बिना पेड़ की छाया कैसी ? कुछ भी हो, दुनिया कुछ न कुछ तो कहती ही रहती है। जोखू के जेल चले जाने के बाद बालो की जो हालत लखनऊ में हुई थीं हो सकता है मेरी आँखे मिचने के बाद यहाँ भी वैसी ही छीछालेदर मच जाय। तब क्या होगा ? वहाँ बंगाली था, जो बालो के पीछे ऐसा पड़ गया कि एकदम उसकी जिन्दगी ही गारत कर दी। यहाँ नेवाजी उससे चार कदम आगे है। मैं देखती हूं कि जब से बलवन्ती आई है, आये दिन वह मेरे घर आकर लल्लो-चप्पो किया करता है। वह आदमी अच्छा नहीं है। वह घूस की तरह भीतर ही भीतर घर को खोखला करना खूब अच्छी तरह जानता है। उससे बालो को खतरा है क्योंकि ब्याह के पहले कैसी थू-थू मचवा दी थी उसने ? वह सभी तरह के नाटक खेल सकता है !

इस तरह हरदेई अपने में अशांत थी और थी बिल्कुल निश्चिन्त बलवन्ती अपने में ! उसकी धारणा थी कि यदि औरत में लाग न हो तो आदमी उसकी ओर आंख उठा कर भी नहीं देख सकता ! मजाल है किसी की मुझे कोई रत्ती भर छू जाय या आंख उठा कर देख जाय। दुनिया के ऐसे पाजी लोगों को दुरुस्त करना मुझे अच्छी तरह आता है। रह गई काम-धन्धे की बात सो उसके लिये ऐसा है कि दुनिया में सभी कुछ चलता है। पेड़ कभी बारहों महीनों फलता नहीं रहता। ऐसे ही अगर बरसात में मन्दी चल रही है तो जाड़े में इतना काम बढ़ेगा कि मैं करते-करते थक जाऊंगी और काम नहीं चुकेगा।

इस भांति एक ओर साहस था, भविष्य के प्रति बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं और दूसरी ओर ममता का स्त्रोत गहन चिन्तन की धार से संगम करता हुआ, इधर-उधर भाग रहा था।

जब आसमान पर बादलों की दौड़-भाग मचती और अम्बर पर स्याही सी पुत जाती, तब बलवन्ती यह महसूस करती थी कि दुनिया में सभी एक धार में नहीं बहते हैं। मिनटों में भाग्य बनता है और पलक मारते ही बिगड़ जाता है ! कौन जानता है कि जो कौर तोड़ा गया है वह मुँह तक पहुंचेगा भी या बीच में ही रह जायेगा ? अभी अभी आसमान साफ था और देखते-देखते वह बादलों से काला हो गया, तनिक देर में फिर उजला हो जायेगा। फिर समझ में नही आता कि माँ इतना लम्बा वितान क्यों तानती हैं ? उन्हें हमेशा यह चिन्ता रहती है, कि आज तो कट गया और कल क्या होगा ? मैं यह सब नहीं मानती। जो होना है, वह होकर रहेगा। आदमी को कोशिश करनी चाहिये। वह कामयाब भी होती है और नाकामयाब भी !

× × ×

अवसरवादिता का ही दूसरा नाम पलायनवाद है। नेवाजी इसी वाद का वादी था। उसे मौके से फायदा उठाना खूब आता था। अवसर

वह हरदेई को समझाया करता कि वलवन्ती को किसी के हाथों सौंप दे। अभी कच्ची उम्र है और जिन्दगी बहुत लम्बी है। कब तक वह खाती कमाती रहेगी। दुनियां में दोस्त वहुत कम हैं और दुश्मनों की तो गिनती नहीं। तुम बूढ़ी हुई हो तुम्हारा भी हाथ पैर थका है, बहुत वड़ी जिम्मेदारी है, वलवन्ती की तुम्हारे सिर।

नेवाजी की बातें सुन कर हरदेई हाँ कर देती थी। वह भली भांति जानती थी कि नेवाजी कोरी दुनियादारी करता है, वह किसी का हमदर्द नहीं, अपने मतलव का साथी है। और थी भी यही वास्तविकता! नेवाजी मौखिक सहानुभूति इसलिये करता था, जिसमें हरदेई उससे प्रभावित वनी रहे और उसका आवागमन उसके घर में होता रहे यही उसके लिए पर्याप्त है, क्योंकि वलवन्ती तो उसके घर जाती नहीं थी और उसकी प्यासी आँखें अपनी ललचाई दृष्टि लिये वलवन्ती के रूप और यौवन को निहार-निहार कर नहीं थकतीं थीं।

इन सब बातों के साथ एक बात यह भी थी। नेवाजी इस तथ्य को जानता था कि हरदेई वड़ी सयानी है वह सुनती सब की है, लेकिन करती अपने ही मन की है। वह बलवन्ती का घरौना (पुर्नविवाह) किसी के कहने से नहीं करेगी जब समझेगी तो अपने आप ही जो चाहेगी करेगी। फिर मैं दुनियादारी करने से क्यों पीछे रहूं, जवानी जमा-खर्च में कितनी देर लगती है।

और एक दिन जब मां-बेटी दोनों कोठरी में वैठी थीं, दिन चढ़ रहा था और भादों की उमस कोठरी में समा रही थी तब हरदेई ने स्नेह सिक्त स्वर में धीरे से कहा—'वालो, मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूं!'

'क्या?' वलवन्ती की जिज्ञासा जाग उठी।

और हरदेई कहने लगी—'सोचती हूं कि, मैकू को वुलाऊं उससे सलाह लूं और तुम्हें किसी की चूड़ियाँ पहना दूं!'

वलवन्ती एक दम उबल पड़ी। वह तेज गले से बोली—'नहीं, माँ,

यह सब ढकोसला है। मैं ऐसे झंझट में नहीं पड़ूंगी। तकदीर में रंडापा लिखा था सो मिल गया। अब दूसरे की चूड़ियां पहन कर मैं सरग (स्वर्ग) में बैठे अपने आदमी का मन नहीं दुखाऊंगी। यों ही नरक भोग रही हूं, ज़िन्दगी को नरक से कभी कम मत समझो माँ। मैं अब दुनियावी चकल्लसों में अपने को नहीं फँसाऊंगी। दुनिया को बकने दो, सभी अपनी-अपनी अलापते हैं। मुझे किसी से कोई मतलब नहीं है। दुनिया बड़ी मक्कार है, मैं कहती हूं कि इन बिरादरी वालों की बातें तुम सुनो ही नहीं। मैं अपना भला बुरा खुद समझती हूं।'

हरदेई बलवन्ती को क्रोधावेश में देख शान्त होकर कहने लगी — 'सुनो मेरी जिन्दगी का क्या भरोसा, आज आंखें मिच जायें, कल दूसरा दिन होगा। फिर तुम अकेली रह जाओगी और औरत जात के लिए यह बहुत मुश्किल है कि वह अकेले अपनी भरी जवानी काट ले जाय। उसके एक नहीं तमाम दुश्मन पैदा हो जाते हैं और उसे चैन से नहीं बैठने देते। भूल क्यों जाती हो, लखनऊ में तुम्हारे साथ क्या हुआ? तुम लाख चाहोगी कि अपना कमाओ अपना खाओ और दुनिया से मतलब न रखो; लेकिन दुनिया वाले तुम्हें कल से चैन नहीं लेने देंगे। अभी मैं हूं, इसलिए किसी की हिम्मत नहीं पड़ती है, नहीं तो यहीं रोज नये-नये शिगूफे उड़ते। तुम पाक दामन बन कर रहना चाहती और दुनिया तुमको बदनाम करके छोड़ती। बात मान लो, बानो! औरत आदमी के बिना हमेशा बे सहारा रहती है!'

बलवन्ती माँ की बातें सुनती जा रही थी, सरसुता उसकी गोद में खेल रही थी और थोड़ी सी धूप चौखट लांघकर अन्दर आ रही थी। बाजार जाने का समय हो रहा था। उसको यह असमय की शहनाई बिल्कुल अच्छी नहीं लग रही थी। वह खीझ कर कहने लगी—'मालूम होता हैं माँ! किसी ने बहुत गहरी बूटी पिला दी है तुमको! मैं जब एक बार चूड़ियाँ तोड़ चुकी हूं तो दुबारा नहीं पहनूंगी। आदमी

में क्या चार चांद लगे होते हैं। कायदे से अगर देखा जाय तो औरत आदमी से एक कदम भी पीछे नहीं है। तुम कहती हो कि मुझे दुनिया से डरना चाहिये और मैं कहती हूं कि दुनिया से डरना नहीं बल्कि उसकी ज्यादतियों से लड़ना चाहिए। जमाना दब्बूपन का नहीं है, जो दवा मो ग ा। अगर मैं दिलेरी से काम न लेती तो गुंडे भाई, अब तक मुझे जहन्नुम पहुंचा चुके होते। तुम डरती क्यों हो मां! ऐसे लुच्चे, लफंगे और शोहदों के लिए मैं नाहर हूं नाहर!'

हरदेई कुछ नहीं बोली। वह सरसुता को अपनी गोद में खींच बहलाने लगी और बलवन्ती फिर कहने लगी—'अच्छा मां, अब मैं बाजार जाती हूं, तुम सरसुता को सम्हालो और ऐसी टुच्ची बातों को अपने मन में कभी मत लाया करो। दुनियावालों को बहकाना खूब आता है लेकिन कोई किसी का भगवान नहीं है। जिसके जो भाग में लिखा है वह होकर रहता है।'

यद्यपि हरदेई काफी चिन्तित थी; लेकिन फिर भी उसे हँसी आ गई और उसी मुद्रा में वह कहने लगी—'जाओ बाबा! तुझसे दलील कौन करे; तेरी वकालत के आगे किसी की नहीं चलेगी।'

बलवन्ती हँस पड़ी और हँसते हँसते घर से बाहर हो गई।

बलवन्ती रास्ते में यह सोचती चली जा रही थी कि अपनी समझ से मां ठीक कहती है। मगर मेरी बुद्धि में वह बात नहीं धँसती कि रोटी और कपड़े के लिए मैं दूसरे का दामन थामूं! जिन्दगी में जो कुछ होना था सो हो चुका, बहुत कुछ बना और बहुत कुछ बिगड़ा, अब क्या बच्चों की तरह मिट्टी के घरौंदे मैं रोज बनाती और बिगाड़ती रहूंगी। यह कुछ नहीं; आदमी को हमेशा अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिए, दूसरे की बताई हुई राह पर चलने वाला जिन्दगी भर भटकता है।

बलवन्ती की विचारधारा प्रबल वेग से बहती जा रही थी और सूरज की तिरछी किरणें उसके सिर पर तीखी पड़ रही थीं। सूरज की किरणें नहीं आग की चिनगारियां थीं जो उसके बदन पर पड़ चींटी की तरह काट रही थीं।

—०—

मघा नक्षत्र खाली निकल गया, एक बूँद भी पानी नहीं बरसा। लेकिन पूर्वा नखत (नक्षत्र) ऐसा बरसा कि सारी धरती तर हो गई। पानी की झड़ी लगी फिर लगी ही रही। लगभग एक हफ्ते तक उसका क्रम नहीं टूटा। ऐसी स्थिति में उन लोगों की आफत हो गई, जो रोज कमाते हैं और रोज खाते हैं। नौकरी और दूकानदारी तो केवल अपने में अभाव की ही अनुभूति करती है, किन्तु मजदूर पेशा लोग बे मौत मरने लगते हैं, उन्हें रोटियों के लाले पड़ जाते हैं। बलवन्ती बाजार नहीं जा पाती थी और जाकर करती भी क्या, मैदान खाली पड़ा रहता था, बाजार लगती ही नहीं थी।

पानी सांस नहीं ले रहा था। पूर्वा हवायें मचल-मचल कर बरस रही थीं। बाहर के व्यापारियों का आना सम्भव नहीं था और ठेकेदारों का यह हाल था कि कारीगरों को छुट्टी दे दी गई थी, क्योंकि काम बिल्कुल नहीं चलता था। अत. बलवन्ती को कहीं से भी काम नहीं मिला और एक दिन यह नौबत आ गई कि उसे अपनी चांदी की हल्की सी हँसली पांच रुपये पर गिरवी रख देनी पड़ी। तब कहीं जाकर घर में चूल्हा जला।

नेवाजी को पड़ोस के कालीदास से इस बात का पता चल गया था कि अभी अभी बलवन्ती अपनी हँसली गिरवी रख गई है। वह सोचने लगा कि मौका अच्छा है, इस समय जब बलवन्ती को कहीं से काम नहीं मिल रहा है तो अगर मैं काम दूँ तो दोनों मां-बेटी इन्कार नहीं कर पायेगी। क्या करूँ यह जमालो बला की तरह मेरे गले पड़ी है अगर यह न होती तो अब भी मैं समझा बुझा कर बलवन्ती से घरौना

लेता। लेकिन ऐसे नहीं तो दूसरे ढंग से बलवन्ती पर अपना असर तो डालना ही है। ब्याह के पहले, मैंने बहुत कोशिश की, खूब हाथ पैर मारे मगर चिड़िया जाल में नहीं फँसी। मन बहुत पगला है, उसकी टेक बलवन्ती पर लगी है. अगर दांव चल गया तो बलवन्ती को अपनी बना कर ही मानूंगा ?

ऐसी नीच विचारधारा को लिए हुए उसी सन्ध्या को नेवाजी बलवन्ती के घर जा पहुंचा।

बलवन्ती साँझ का आगमन होते देख माँ से कह रही थी — कुबेरी बेला हो गई है और सरसुता अब तक सो रही है उसे सोने दूँ या जगा दूँ मां ?''

हरदेई ममत्व से भर आई और धीरे-धीरे कहने लगी—'उसको न छेड़ो बालो ! कच्ची नींद टूट जायेगी तो रो रोकर घर भर देगी। बच्चों को नींद में कभी नहीं जगाना चाहिये।'

तब बलवन्ती ने आले में रखी मिट्टी के तेल की ढिबरी उठा ली और उसकी छोटी सी बाती को खींचकर ऊपर निकालने लगी। तभी नेवाजी ने कोठरी में प्रवेश किया। उसको देखते ही बलवन्ती ने बोरा बिछा दिया और दुनियादारी करती हुई कहने लगी—'आओ नेवाजी भाई, बैठो।'

हरदेई बलवन्ती के मुँह से नेवाजी का नाम सुनकर सामने की ओर मुँह उठा, पूछने लगी—'कौन, नेवाजी है क्या ?'

बलवन्ती के बोलने से पहले ही नेवाजी बोल उठा—'हाँ काकी ! मैं ही हूं, कहो कैसे बैठी हो ? पानी-बून्द में घर से निकलना होता ही नहीं। अभी अभी तनिक बूँदें रुकी तो चला आया।'

बलवन्ती ने कुप्पी जला कर दीप-देवता को दोनों हाथ बाँध और मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। फिर उसको आले में रख माँ के पास आकर बैठ गई।

हरदेई नेवाजी से कह रही थी—'पानी को तो देखो, आज आठ दिन होने आ रहे हैं और वह थमता ही नहीं। घर में बैठे-बैठे जी ऊब आता है। न कहीं जा-आ पाती हूं, बड़ी किचकिच है। कई दिन से वालो बाजार भी नहीं जा सकी और बाजार तो लगी भी नहीं होगी।'

नेवाजी यही तो सुनना चाहता था। वह मन ही मन उत्सुक हो अपना तीर फेंकता हुआ बोला—'तो फिर काम कैसे चलता है काकी? क्योंकि तुम्हारे घर में रोज कमाना और रोज खाना ऐसा ही चलता है।'

हरदेई इस पर चतुराई के साथ जवाब देने लगी—'सब भगवान की दया है, सुबह शाम खाने को दे ही देता है।'

किन्तु नेवाजी का मतलब इससे हासिल नहीं हुआ। तब वह तथ्य की बात कहने लगा—'तुम इसको भगवान को दया कह सकती हो काकी, लेकिन मैं तो इसे नासमझी ही कहूंगा। मुझे बहुत दुख है कि आज बलवन्ती ने अपनी हंसली कालीदीन के यहाँ गिरवी रखी तब कहीं जाकर तुम्हारे घर में चूल्हा जला है। भला इसकी क्या जरूरत थी, मैं कहीं दूर था क्या? अरे, रुपये की जरूरत थी, तो मुझ से कहना चाहिए था। गहना गुरिया तो आदमी मौत और जिन्दगी के लिए रखता है। लो ये रुपये, और हंसली अभी मगवा लो!' यह कहकर उसने पाँच रुपये हरदेई के हाथ पर रख दिये और तनिक रुक कर फिर कहने लगा—'जब कहीं काम नही मिलता है तो बलवन्ती को मेरे पास आना चाहिए था। हालांकि आजकल छः कारीगरों की जगह पर सिर्फ दो कारीगर आ रहे है, क्या हर्ज है, एक को जवाब दे दूंगा वही काम बलवन्ती करेगी।

अब हरदेई दूनी द्विविधा में पड गई। वह व्यग्र स्वर में कहने लगी 'नेवाजी मुझे आफत में न डालो आदमियों की बात और होती है, मगर, औरतें बहुत छोटी-छोटी बात को लेकर दुनिया भर का बाई-बेला मचा देती हैं। मैं जमालो से बहुत डरती हूं। रुपये ले जाओ और कारीगर को

छुड़ाने की कोई जरूरत नहीं मैं किसी की रोजी पर लात नहीं मारना चाहती। मेरी बातों का बुरा मत मानना। इस समय मेरे सामने पहले से भी बडी जिम्मेदारी है, तब कालो कुंआरी थी और अब बेवा है। कालो के पीछे तुम्हारे घर में झगड़ा हुआ था। तुमने जमालो की नाक काटी। बिरादरी में तुमसे ज्यादा मेरी थू-थू हुई सो भइया मुझे बख्शो। मैं पेट कूट कर पीर नहीं पैदा करना चाहती। तुम्हारे मन में हम लोगों के लिए गुंजाइश है यही बहुत है।"

यह सब सुनकर नेवाजी के देवता कूच कर गये। वह बाजी जीतने आया था और मात खा कर रह गया। वह एकाएक हरदेई को कोई जवाब नहीं दे सका। सच्चा खाका अन्धी बुढ़िया ने उसके सामने खोल कर रख दिया था। अतः रंगबाजी और लीपा-पोती के लिए कहीं भी सन्धि नहीं रह गई थी। रुपये-रुपये के पांचों नोट जमीन पर पड़े थे। वह कभी उनकी ओर देखता और कभी हरदेई की ओर, और ऐसे ही बीच-बीच में उसकी दृष्टि बलवन्ती की ओर घूम जाती थी।

मां चुप थी, नेवाजी पशोपेश में था और बलवन्ती दुनियादारी करती हुई नेवाजी की ओर उन्मुख हो कह रही थी—'माँ ठीक कहती है नेवाजी भाई ! वाकई मैं भी बहुत घबड़ाती हूं जमालो से, मिनटों में तिल का ताड़ बनाती हैं। पानी क्या बरसता ही रहेगा ? कभी तो बन्द होगा ! मैं बाजार जाऊंगीं, हमेशा की तरह काम करूंगी और वख्त जरूरत पर गहना,गुरिया सभी कोई अटका देता है। मैंने कोई अनहोनी बात तो नहीं की।"

नेवाजी बलवन्ती को कुछ उत्तर दे, इसके पूर्व ही हरदेई पुत्री के समर्थन में बोल उठी—'नेवाजी जाओ भइया रुपये ले लो अगर कहीं जमालो को मालूम हो गया तो बेकार के लिए तुम्हारे घर में हाय-हाय होगी, मैं नहीं चाहती कि हम लोगों के पीछे तुम परेशानी में पड़ो। यही क्या कम है जो तुम इतना ख्याल तो रखते हो !'

नेवाजी ने भरसक प्रयत्न किया कि हरदेई रुपये ले ले। उसने उसे बहुत समझाया लेकिन वह नहीं मानी। नेवाजी की प्रत्येक बात को वह अपने तर्कों से खण्डित करती गई और बीच-बीच में बलवंती भी उनमें अपना सहयोग देती गई। निराश नेवाजी उठकर अपने घर चल दिया। जब नेवाजी बाहर आया तो नन्हीं-नन्हीं बूंदों की बड़ी बूंदें बनकर बरसने लगी थीं। वह भीगता हुआ घर पहुंचा वहाँ जमालो किसी पड़ोसिन के पास बैठी बातें कर रही थी। वह सीधा अपनी कोठरी में चला गया और जाते ही चारपाई पर बैठ, घुटनों पर दोनों कुहनियाँ टेक ठुड्डी पर हाथ लगा सोचने लगा कि लगता है बलवंती के लिए मुझे कोई दूसरी राह अपनानी पड़ेगी। कितनी हेकड़ है वह, बल्लियों उछलती है अगर उसकी ओर कोई आँख उठाकर देखता है और सीधे बोलने पर पर छूटते ही वह उपदेश देने लगती है। मन बड़ा चंचल है उसको जितना मैं दबाने की कोशिश करता हूं, उतना ही वह भटकता है। एक बात यह भी है कि बलवंती के साथ दांव, धोखा और जबरदस्ती कुछ भी नहीं चल सकता। वह गर्म लोहा है और ठण्डा लोहा ही हमेशा गर्म लोहे को काटता है। धीरज और तरकीब के ही साथ वह काबू में आ सकती है पता नहीं यह बुढ़िया हरदेई अभी कब तक जियेगी। उसकी चौकीदारी में तो परिन्दा भी पर नहीं मार सकता।

नेवाजी उधेड़बुन में व्यस्त था। पानी खूब जोर बांधे बरस रहा था और रात की अन्धेरिया छिपी झुक आई थी मानो काल-रात्रि हो। प्रलय के समान गर्जन करते हुये मेघ बरस रहे थे। बीच-बीच में बिजली की कड़क कानों के परदे फाडने का पूरा उपक्रम करती, तब लगता कि यह पानी बरसता ही रहेगा कभी नहीं थमेगा।

× × ×

पूरे ग्यारह दिन बाद पानी बन्द हुआ और बलवन्ती बाजार गई। मजदूरी में कुछ थोड़े से पैसे मिल गये जिससे उस दिन का काम चला

हँसली वाले पाँच रुपये अब तक समाप्त हो चुके थे। दो तीन दिन बाद फिर पानी की झड़ी लग गई। पुराने और जर्जर मकान गिरने लगे, साथ ही गंगा में भी बाढ़ आ गई, जिससे नगर में त्राहि-त्राहि मचने लगी।

अब बलवन्ती हैरान हो उठी। उसके सिर पर यदि केवल उसका भार होता, तो वह वहन कर ले जाती। लेकिन माँ और पुत्री दोनों का उत्तरदायित्व उसी पर था, एक बच्चा था और एक बुढ़िया। पुरानी लोकोक्ति को वह भली भांति जानती थी कि बच्चे और बूढ़े में कोई फर्क नहीं होता है। पूरा दिन बीत गया था, घर में रोटी नहीं बनी। बलवन्ती भूखी थी, हरदेई भी बासी मुँह बैठी थी और सरसुता भूख से बिलबिला रही थी। तब बलवन्ती सोचने लगी, क्या करूँ? पैसे कहां से जुटाऊँ? मुझसे सरसुता का रोना और बिलबिलाना बिल्कुल नहीं देखा जाता है।

संयोग की बात नेवाजी छाता लगाये हुये बलवन्ती के दरवाजे पर आकर रुका और बाहर से ही पुकारा—'अरे बलवन्ती क्या कर रही हो?' यह कहते-कहते छाता बन्द कर वह अन्दर आ गया।

बलवन्ती दुनियादारी का प्रदर्शन कर सहज स्वर में कहने लगी—'कुछ नहीं, आओ नेवाजी भाई, कहो पानी में कैसे निकल पड़े?'

नेवाजी हरदेई के पास बैठता हुआ मीठे स्वर में कहने लगा—'अभी-अभी ख्याल आया कि पानी तीन दिन से झड़ी बांधे बरस रहा है, तुम काम पर नहीं जा पाई होगी। मैंने सोचा चलूँ देखूँ अगर जरूरत हो तो कुछ चप्पलें, तुम्हारे घर भिजवा दूँ! बोलो क्या कहती हो बलवन्ती?'

बलवन्ती माँ का मुँह देखने लगी। वह नेवाजी को कुछ भी जवाब नहीं दे पाई। तब नेवाजी फिर कहने लगा—'संकोच क्यों करती हो बलवन्ती? क्या यह भी मैं तुम्हारे ऊपर कोई एहसान कर रहा हूं? मेहनत करोगी, उसका पैसा लोगी!' यह कह नेवाजी हरदेई की ओर

उन्मुख हो फिर कहने लगा—'क्यों काकी ठीक है न ? तुम चुप क्यों हो, बोलती क्यों नहीं ?

यद्यपि हरदेई घर की स्थिति को अच्छी तरह जानती थी, किन्तु वह अपना मान नहीं खोना चाहती थी - उसे यह बिल्कुल पसन्द नहीं था कि बलवन्ती नेवाजी का काम करे। अतः वह स्वयं अपना मत न प्रदान करके बलवन्ती के ऊपर बात ढाल कर कहने लगी—'क्या बोलूँ, काम करना वाली को है, उसी से पूछो ?'

नेवाजी अवसर उपयुक्त देख, बलवन्ती से कहने लगा—'अच्छा, तो मैं जाता हूं और अभी कारीगर के हाथ चप्पलें भेजे देता हूं ?' यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही बलवन्ती से कहने लगा—'हाँ एक बात तो भूल ही गया अगर पैसों की जरूरत हो तो कुछ देता जाऊं ?'

बलवन्ती आवश्यकता होने पर भी जल्दी से बोल उठी—'नहीं, पैसों की जरूरत नहीं है, चप्पलें भेज दो। मैं कल सीकर पहुंचा दूंगी।'

नेवाजी मगन-मन से सोचता हुआ कि 'उंगली पकड़ कर, पहुंचा पकड़ने में कितनी देर लगती है ?' चला गया।

कारीगर बलवन्ती को एक दर्जन चप्पलें दे गया और दिन भर की भूखी बलवन्ती कुप्पी सामने रखे सिर गड़ाये काम में जुट गई। सोच रही थी कि सब चप्पलें सीकर ही सोऊंगी। आज घर में फाकाकशी हुई है, सबेरे ही नेवाजी को चप्पलें दे आऊँगी तब पैसे मिलेंगे और तभी माँ और सरसुता दोनों की भूख मिटा पाऊँगी !

सरसुता सो गई थी और हरदेई भी नींद में खुर्राटे ले रही थी, लेकिन बलवन्ती कार्य में व्यस्त थी। पानी बरस रहा था। तेज हवा झकोरे भर रही थी, जिससे बार-बार ढिबरी की लौ लुप-लुपा कर रह जाती।

सवेरे जब बलवन्ती चप्पलें लेकर नेवाजी के घर पहुंची तो जमालो उसे देखकर चौंक उठी और नेवाजी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्दी बलवन्ती ने काम पूरा कैसे कर लिया ? वह चौंककर पूछने लगा—'अरे बलवन्ती ! क्या रात को सोयी नहीं ? बड़ी जल्दी चप्पलें सी लीं ?'

उत्तर में बलवन्ती कहने लगी—'सोई क्यों नहीं, मेरी आदत है कि जो काम सामने होता है, उसे निपटाकर ही दम लेती हूं ।'

नेवाज़ी मुस्करा उठा । उसने डेढ़ रुपया बलवन्ती के हाथ पर रख दिया और उसको प्रसन्न करने के लिये एक दर्जन चप्पलें सीने के लिये और दे दीं ।

बलवन्ती खुशी-खुशी अपने घर चली गई तब जमालो नेवाजी से क्रुद्ध स्वर में बोली—'फिर चलने लगा तुम्हारा वही पुराना चरखा । मैं कहती हूं कि एक कारीगर को हटा कर आखिर तुमने बलवन्ती को काम क्यों दिया ? उसमें क्या सुरखाब के पर लगे हैं ?'

नेवाजी क्रोध को दबाता हुआ धीरे से जमालो से बोला—'तुम तो बहुत जल्दी सनक जाती हो । पहले यह समझने की कोशिश किया करो कि मैं जो भी काम करता हूं कुछ सोच समझ कर ही करता हूं । तुम उसके उल्टे माने लगाने लगती हो ।'

ज़मालो तमक कर कहने लगी—'क्या गलत माने लगाती हूं जी ?'

नेवाजी हंस पड़ा और वह सहज स्वर में बोला—'तुम्हारे मन में ाप बड़ी जल्दी आ जाता है । मुझे बलवन्ती से क्या मतलब, मैं तो सक़ी गरीबी पर तरस खाकर उसे काम दे रहा हूं, तुम्हें नहीं मालूम गा कि इतने दिन से पानी की झड़ी लगी है, कल उसकी माँ मिली थी । ह बेचारी हाथ जोड़ रही थी और कह रही थी कि पानी के कारण बल-ती बाज़ार नहीं जा पाती है, रोटियों के लाले पड़े हैं, आज घर मे चल्हा ों जला । बड़ी मेहरबानी हो भइया अगर तुम उसे काम दे दो । मुझे

तरस आ गया। कारीगर ठहरा आदमी की जात, हाथ-पैर मार कर कहीं भी काम ढूंढ लेगा। महीने पंद्रह दिन की बात है कुआंर के बाद काम चलने लगेगा तब मुझसे कोई मतलब नहीं रहेगा। बलवंती ठेकेदारों का काम करने के बजाय बाजार जाकर बाहर के व्यापारियों का काम करना ज्यादा पसंद करती है और है भी ठीक। यह काम बारीकी का है। मेहनत ज्यादा पड़ती है और पैसे उतने नहीं मिलते। बाजार में थोड़ी देर की मेहनत में रुपया डेढ़ रुपया वसूल हो जाता है। तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिए जमालो।'

जमालो चुप रहने वाली स्त्री नहीं थी। वह तिनककर बोली—'मैं बुरा क्यों मानूंगी तुम दरियादिल बन रहे हो, तरस खा रहे हो, तो ऐसी मुफ्त की गंगा में हराम के गोते बलवती नहीं लगायेगी तो क्या राहगीर लगायेंगे? वह सुन्दर है, जवान है और तुमको तो मैं जानती ही हूं कि मुंह में सोना डाले हो सोना।'

नेवाजी की हँसी लुप्त हो गई। क्रोध से मुँह विवर्ण हो उठा, लेकिन स्वर में नरमी रही। वह कहने लगा—'जमालो बस ऐसी छोटी-छोटी बातों को लेकर तो झगड़ा बढ़ जाता है, होता यह है कि तुम्हारी जबान चलती है, मेरा हाथ चलता है और दुनिया तमाशा देखती है। यकीन भी तो किया करो, जो बात थी बतला दी और फिर भी तुम मामले को तूल देती जा रही हो, यह अच्छा नहीं।'

जमालो देर तक बड़बड़ाती रही, किन्तु फिर भी नेवाजी उसके मुँह नहीं लगा। वह चुपचाप सुनता रहा और यह सोचकर टाल गया, कि कौन इसके मुँह लगे, बेकार के लिये अच्छा भला मन, खराब हो जायगा। और जमालो को आश्चर्य हो रहा था कि आखिर आज नेवाजी को हो क्या गया है कि कहाँ तो वह नाक पर मक्खी नहीं बैठने देता था, छींकते ही नाक काटने को तैयार हो जाता था और कहां इतना सीधा हो गया

कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। इसके पहले मैंने इसको कभी इतना सीधा नहीं पाया था। समझ गई कि मुझसे मीठी-मीठी बातें करने का मतलब कुछ और ही है। सोचा होगा, कि अगर मुझको नाराज कर देगा तो फिर उसका काम नहीं बनेगा। मैं हाय-हाय मचाऊँगी, मुहल्ले में चख-चख होगी और चिड़िया बलवन्ती उसके हाथ से निकल जायेगी। ब्याह हो गया था मैं बेखटके थी। रांड फिर मरी आकर यहीं? इसका सत्यानाश हो। इसी के पीछे मेरी नाक कटी और अब भी शायद मुझे चैन से नहीं बैठने देगी।

जमालो का अन्तर्मन भावी की आशंका से काँप रहा था। वह बलवन्ती और नेवाजी के प्रति न जाने क्या-क्या सोचती रही? नौबत यहां तक पहुंच गई कि रात को चारपाई पर पड़े-पड़े वह सोचती रही और करवट बदलती रही। पता नहीं कब उसकी आँख लगी। सबेरे जब सोकर उठी, तो दिन बहुत चढ़ आया था।

प्रायः ऐसा होता है, कि जिस व्यक्ति से मन खट्टा हो जाता है, उससे फिर तबीयत हटती ही चली जाती है। उसकी कमियां उसकी खूबियों को अपने आवरण से ढँक लेती हैं, वह मन से दूर और दूर होता जाता है। गुस्सा और प्यार आदमी को उसी पर आता है जिससे कुछ लगाव होता है। जब दुराव के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं तो क्रोधी से क्रोधी आदमी भी अपना क्रोध भूल जाता है। दूसरे की कही हुई बातें उसे बकवास लगने लगती हैं। और यही कारण था कि नेवाजी अब जमालो से दूर-दूर भागता था, प्रकट में उसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता था। मारपीट और कड़ी बात नहीं कहता था। उसकी इस नीति परिवर्तन के दो रहस्य थे। पहला जमालो की ओर से मन हट जाना और दूसरे का केन्द्र बिन्दु थी बलवन्ती। जमालो सोचती थी कि नेवाजी उससे इसलिये नहीं झगड़ता है, कि कहीं बलवन्ती चौंक न जाये; यह बिल्कुल सही था।

भादों बीतने के साथ पानी बन्द हो चुका था। बलवन्ती लगातार दो दिन तक नेवाजी के घर नहीं आई तो उसको चिन्ता हुई। वह तीसरे दिन अलख सवेरे ही बलवन्ती के घर जा पहुंचा।

वहां पूछने पर ज्ञात हुआ कि बलवन्ती आज-कल बाजार जाती है। वह अब चप्पलें नहीं सियेगी। नेवाजी एकदम चौंक उठा और हरदेई से कहने लगा—'देखो काकी, यह भला बलवन्ती की जबरदस्ती नहीं तो और क्या है ? मैंने तो उसको काम देने के लिए अपने एक कारीगर को जबाब दे दिया और उसने मुझे बताया भी नहीं और बाजार जाने लगी।

तुम्हीं बताओ, घर बैठे काम मिले वह अच्छा है या काम के लिये भटकना पड़े यह अच्छा है। मैं तो इसे समझदारी नहीं कहूंगा ?'

'मैं क्या बतलाऊं नेवाजी काम करना उसे है, जो मन में आता है, करती है। उसी से पूछो। तुम्हारे अहसान को भइया मैं जिन्दगी भर नहीं भूलूँगी। गाढ़े में तुमने जो साथ दिया है, वह सगा सम्बन्धी भी नहीं देगा।'

और समझ गया था नेवाजी भी तथ्य को कि यह सब बुढ़िया की ही कारस्तानी है। उसी ने बलवन्ती को सुझाया होगा कि अब बाजार लगता होगा वहीं जाया करो। चप्पलें सीने में क्यों आँखें फोड़ती हो जब थोड़ी देर में चोखी मजदूरी हो जाती है ! लेकिन फिर भी नेवाजी माँ-बेटी के सम्मुख रंगा-सियार बना रहा। बोला-'काकी ! मैं तो भले के लिए कहता हूं।' इतना कहकर वह बलवन्ती के मुख पर दृष्टि टिका, मृदु स्वर में बोल उठा—'क्यों बलवन्ती ! मैं गलत कह रहा हूं। आखिर मेरा काम करने में कोई बुराई है क्या ? मेरी आदत है कि कारीगरों को काम मिले या न मिले, मैं तुम्हारा ख्याल पहले रखता हूं। नादानी अच्छी नहीं। मैं यहाँ तक तैयार हूं कि अगर तुम मेरे घर नहीं आ सकती हो, तो तुम्हारे घर चप्पलें भेज दिया करूँ ? कल से बाजार मत जाना और कल ही क्यों अभी जाकर मैं चप्पलें भेजता हूं, बाजार जाने की कोई जरूरत नहीं।'

बलवन्ती द्विविधा में पड़ गई। वह न हाँ कह पाई और न ना। नेवाजी थोड़ी देर तक बैठा लल्लो-चप्पो करता रहा। फिर उठ कर चला गया। उसके जाने के थोड़ी देर बाद ही एक कारीगर आया और बलवन्ती को चप्पलें देकर चला गया।

बलवन्ती भी मन ही मन शंकित थी। वह जवान औरत को फांसने वाले इन सब्ज बागों को खूब समझती थी और इन मेहरबानियों में होने वाले दाल के काले को समझ कर निर्णय कर बैठी थी। मैं धोखा नहीं

खा सकती ! जिसे वह दांव समझ रहा है वह मेरे लिए हंसी खेल है। वह डाल-डाल है तो मैं पात-पात हूं।'

× × ×

सांप मर गया और लाठी भी नहीं टूटी। जमालो जो चाहती थी वह हो गया। वह अपने घर बलवन्ती का आना-जाना तनिक भी पसन्द नहीं करती थी। काम काज से उसको कोई शिकायत नहीं थी। दिन धीरे-धीरे सरक रहे थे, कार्तिक आ लगा था। शरद की हवायें धरती को चूम रही थीं और बाजार की मन्दी अब तेजी में बदल गई थी। नेवाजी का काम इतना अच्छा चल रहा था कि जहां छः कारीगर हमेशा काम करते थे अब आठ-आठ जुटे रहते और काम फिर भी समेटे नहीं सिमटता था।

प्रगति के समय मनुष्य की उदासी दूर भाग जाती है। उसमें नया बल स्फूर्ति और उत्कण्ठा हो जाती है। जमालो का घर पैसे से खूब भर रहा था। अतः उसे सोचने का मौका ही नहीं मिलता कि नेवाजी बलवन्ती पर मेहरबान क्यों है ? मूल बात तो यह थी कि दम्पत्ति में कभी भूलकर भी लड़ाई-झगड़ा नहीं होता। घर में सर्वत्र सन्तोष खेल रहा था शान्ति बरस रही थी। ऐसा लगता था कि घर के दरवाजे पर एक ओर ऋद्धि खड़ी है और दूसरी ओर सिद्धि। इसलिए जमालो एक पतिपरायणा के सदृश्य नेवाजी के साथ खुला व्यवहार करती थी। लेकिन नेवाजी की कूटनीति अलग ही अलग अपना कौतुक रच रही थी।

कार्तिक की पूर्णिमा की रात थी। राका की उजियाली रुपहली होकर धरती से आलिंगन कर रही थी। जाड़ा अपना प्रथम चरण पूरा कर द्वितीय में पधार रहा था। जमालो ने आज पूड़ियां बनाई थीं; क्योंकि पर्व का दिन था। घर सम्पन्न था दोपहर की ठण्डी पूड़ी-कचौड़ी

उसने कारीगरों को बांट दी थी और इस समय गर्म-गर्म पूड़ियां तल रही थी, नेवाजी बैठा भोजन कर रहा था।

नेवाजी मिट्टी के कुल्हड़ में रबड़ी लाया था। आधी उसने अपनी थाली में रख ली और आधी उसी में रख जमालो की ओर बढ़ा दी। इस पर जमालो आग्रह करने लगी। वह बोली—'अरे! इतनी क्या करूंगी मैं, लो थोड़ी सी और ले लो?' यह कह कर वह कुल्हड़ में से रबड़ी उसकी थाली में परोसने लगी तो पता नहीं नेवाजी एकदम चौंक सा क्यों गया? जल्दी से उसने जमालो का हाथ पकड़ लिया और फिर हंस कर कहने लगा—'मैं तो खास तौर से तुम्हारे ही लिये लाया था जमालो? उसमें से आधी अपनी थाली में रख ली है और फिर भी तुम चाहती हो कि सब मैं ही खा लूं। बहुत चाहती हो मुझे बड़ा अफसोस है कि मैं नाहक ही तुम्हारी दुर्गति करता रहा। तुम कितनी अच्छी हो जमालो?'

जमालो खुशी से गदगद हो उठी। वह हंसी के मिस तनिक शर्मीला भाव बनाकर बोली—'जाओ, आरती उतारना तो कोई तुमसे सीखे! जब प्यार करते हो तो सिर पर बैठा लेते हो और जब गुस्से में होते हो, तो कसाई की तरह काटते हो! मैं बहुत डरती हूं, तुम्हारे गुस्से से। भगवान करे ऐसी ही शान्ति बनी रहे। और मैंने तो अब यह तय कर रखा है कि तुमको नाराज होने का मौका ही नहीं दूंगी! वाकई अब तुम बहुत सीधे हो गये हो।'

नेवाजी खिलखिला कर हंस पड़ा और हंसते-हंसते कहने लगा—'अब आरती तुम उतार रही हो या मैं?'

'तुम!'

'मैं!' नेवाजी हंसोड़ मुद्रा में चौंकने का अभिनय कर यह कह रहा था, तभी जमालो मीठी चुटकी लेती हुई मधुर व्यंगात्मक स्वर में बोल उठी—'तुम नहीं और क्या मैं?'

दम्पति हंसी में एक रस हो गये। वे हंसते-हंसते लोट-पोट हो गये और उन पर आकाश का हंसता हुआ चन्द्रमा किरणों के रूप में अपने फूल बिखेरने लगा।

× × ×

भोजनोपरान्त दम्पति में देर तक वार्ता चलती रही। जिसमें आमोद-प्रमोद का विषय ही प्रधान था। इसके बाद नींद आई और दोनों को अपनी नाव में बैठा कर, सुख की सरिता में बहा ले गई। अन्तर केवल इतना था कि जमालो सो गई थी और नेवाजी जाग रहा था। वह सोते हुये भी जागृत था और जमालो सदा-सर्वदा के लिये सो गई थी। एक ओर स्वासों के स्वर बज रहे थे और दूसरी ओर शहनाई के तार टूट गये थे उनसे जीवन भाग गया था।

सहसा रात के अन्तिम प्रहर में नेवाजी की आंख खुली। वह उठा और जमालो की चारपाई के पास आया। उसने देखा उसकी गर्दन तकिये के नीचे लटक गई है, आँखें बन्द हैं और मुँह की अवारी खुली है। तब उसका हाथ जमालो की देह पर गया गया। हृदय की धड़कन शान्त थी, पेट अभी ज्यों का त्यों गर्म था, लेकिन हाथ पैर अकड़ गये थे और ठंडे हो गये थे।

अब नेवाजी ने जमालो को रजाई पूर्ववत उढ़ा दी और दौड़ा-दौड़ा बाहर आया। पड़ोस के दातादीन चौधरी को जगाकर घबड़ाये हुये स्वर में कहने लगा—'अरे कक्कुआ, जल्दी चलो, घरवाली को सांप ने काट लिया है अभी मेरी आँख खुली, तो देखा रजाई नीचे लटक रही थी और उस पर कुण्डली मारे काला नाग बैठा था। उसने उनको डस लिया है वह मुर्दा सी पड़ी है। सांप तो मुझे देखते ही भाग गया था।'

दातादीन चौधरी पैंतालीस-छियालीस साल के पके हुये, अनुभव वाले व्यक्ति थे। सांप और बिच्छू के काटने पर लोग अपने अन्धविश्वास

को लेकर झाड़-फूंक करने के लिये उनको ले जाते थे। वे तुरन्त ही नेवाजी के साथ चल दिये। उनके पीछे उनके लड़के भी दौड़े आये। रात को ही नीम के कल्ले तोड़े गये, जमालो को पट लिटा दिया गया। उसकी पीठ पर फूल की थाली रख, मंत्र पढ़-पढ़ कर दातादीन बार-बार फूंक मारते और फिर नीम का कल्ला, उसमें छुआ देते।

इस तरह झाड़-फूंक का क्रम चल रहा था और दतादीन कह रहे थे, बस अब देर नहीं है, जिस साँप ने काटा है वह अभी मिनटों में आता है। काटी हुई जगह पर खुद मुँह लगाकर अपना जहर चूंस लेगा। इसके बाद सांप मर जायेगा और नेवाजी तुम्हारी जोरू उठ बैठेगी।

इस भांति बहुत देर हो गई और सांप नहीं आया, तो दातादीन लड़कों से बोले—'जाओ जल्दी से, राम बहोरी नाउत और दुलीचन्द ओझा दोनों को बुला लाओ, मालूम होता है कि सांप को काटे हुये देर हो चुकी है। उसका जहर इसकी देह में फैल गया है, जल्दी करो, नहीं तो फिर झाड़-फूंक कुछ भी काम नहीं देगी।'

लड़के दौड़े-दौड़े गये। ओझा और नाउत दोनों को लिवा लाये। महल्ले में रात के ही समय में अड़ोस-पड़ोस में जगाहट हो गई। बात की बात में नेवाजी का आंगन, लोगों की भीड़ से भर गया।

सवेरे तक दौड़-धूप होती रही, जो जिसे जानता था, वह उस झाड़-फूंक करने वाले को, दौड़-दौड़ कर बुलाता रहा। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। सवेरे की सफेदी में सबने देखा, जमालो की देह एकदम नीली पड़ गई थी। जहर उसकी नस-नस में समा गया था, तब हार मान कर बड़ी बूढ़ी स्त्रियां और वृद्ध जन नेवाजी से बोले— अब आसरा छोड़ो नेवाजी, तुम्हारी घर वाली गंगा नहाई, उसकी क्रिया कर्म की तैयारी करो।'

नेवाजी रोनी सी सूरत बनाये बैठा था। यह सुनते ही, उसकी आंखों

से आंसू झांकने लगे। उसने रुपये लाकर एक पड़ोसी को दिये। वह कफन लेने चला गया और सारा घर मातम में आये हुए, स्त्री-पुरुषों से भरने लगा।

× × ×

जमालो की अन्त्येष्टि करके जब नेवाजी घर लौटा तो प्रगट में बड़े-बूढ़े सभी उससे संवेदना प्रकट कर रहे थे। लेकिन बाहर मुहल्ले में लोगों में कानाफूसी चल रही थी, कि जमालो को सांप ने नहीं काटा था, नेवाजी ने उसको जहर दिया है। लेकिन यह बात कोई नेवाजी के मुँह पर नहीं कहता था। बस्ती में इसकी चर्चा खूब जोरों से चल रही थी।

***

जमालो की मृत्यु हुये लगभग तीन महीने हो चुके थे। धीरे-धीरे उसकी मौत के विषय को लोग भूलने लगे थे। नेवाजी अब अकेला था। उसे अपना अकेलापन इतना खलता था कि हरदम यह अनुभूति होती रहती मानों घर की दीवालें उसको काटने को दौड़ती हैं और सूनापन उसमें समा-समा कर रह जाता है। उसका अन्तःकरण स्वयं उसे धिक्कारा करता कि नेवाजी तुमने यह अच्छा नहीं किया। लोग दुश्मन को भी दांव देकर नहीं मारते हैं। जमालो ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो रबड़ी में संखिया देकर तुमने उसकी जान ले ली, जिसके कारण तुम पैसे वाले हुए, कारीगर से ठेकेदार बन गये, तुमने उसी के साथ विश्वासघात किया। ईश्वर तुमको कभी क्षमा नहीं करेगा।

इस तरह नेवाजी का अस्त-व्यस्त जीवन व्यतीत हो रहा था और वह शीघ्र ही अपने केन्द्र बिन्दु पर पहुंच जाना चाहता था, जिसके लिए वह हत्यारा बना था। बलवन्ती यद्यपि उसके घर आती जाती नहीं थी लेकिन काम उसी का करती थी। नेवाजी को इससे सन्तोष था और वह उंगली पकड़कर पहुंचा पकड़ने वाली अपनी नीति को तनिक भी नहीं भूला था। अतः एक दिन वह अपना प्रस्ताव लेकर हरदेई के पास जा पहुंचा।

फागुन का महीना था। पतझड़ के बाद पेड़ों में नई कोपलें निकल रही थीं, आम बौरा रहे थे और अमराई पर से उड़ती हुई कोयल बलवन्ती के घर के सामने खड़े नीम के वृक्ष पर बैठी कूक रही थी। सवेरा मुखरित हो रहा था। बलवन्ती गृहस्थी के लिए कुछ जिन्स खरीदने पड़ोस के बनिये के यहाँ गई थी। घर में हरदेई अकेली थी।

नेवाजी उसके निकट पहुंच, दो-चार बातें दुनियादारी की कर, फिर उसका मुंह पा, धीरे-धीरे कहने लगा—'काकी ! एक बात कहूं, तुम बुरा तो नहीं मानोगी ?'

'भइया की बातें ? कहो न बुरा क्यों मानूंगी मैं ?'

बस हरदेई के मुँह से यह सुनते ही नेवाजी का साहस बढ़ गया और वह कहने लगा — मेरी राय है कि अगर ठीक समझो तो बलवन्ती का घरौना मेरे साथ कर दो क्योंकि घर तो बसाना ही पड़ेगा मुझे। मैं अपना रोजगार सम्हालूँगा या घर-गृहस्थी समेटता फिरूँगा। मैंने बहुत कुछ सोचा, उसके बाद तुम्हारे पास आया हूं, बोलो क्या कहती हो काकी ?'

हरदेई कुछ क्षण तक मौन रही, फिर गम्भीर होकर कहने लगी—'जानते तो हो नेवाजी कि बालो मेरी एक नहीं सुनती है, उसके जो मन में आता है करती है और घरौने का तो नाम सुनते ही, वह बांसों उछलती है। मैं अपनी राय क्या दूँ ?'

नेवाजी निराश नहीं हुआ। वह सहृदयता पूर्वक कहने लगा—'बड़ों के आगे छोटों की भी कोई राय होती है काकी। तुम कैसी बातें करती हो ? जब बालो को समझाओगी तो मैं यह मान ही नहीं सकता, कि वह तुम्हारी बात न माने। कोशिश करो मेरी यही इच्छा है कि एक पन्थ दो काज हो जायेंगे, मेरा घर बस जायेगा और तुम भी बेखटके हो जाओगी।'

हरदेई हैरान हो उठी थी। वह असमंजस भरी वाणी में बोली —'नेवाजी ! कहते तो तुम ठीक हो, लेकिन जब तक बलवन्ती कुआंरी था, उस पर मेरा जोर था, अब वह अपनी भलाई-बुराई को खुद पहचानने लगी है। मैंने उससे कहा भी, अगर मेरी बात खाली गई तो उससे क्या फायदा ? तुम बिरादरी के और लोगों से कहो, वे तुम्हारा इन्तजाम कहीं न कहीं जरूर करा देंगे।'

'लेकिन काकी, ...

नेवाजी की बात में व्याघात डाल कर हरदेई उद्विग्न हो उठी—'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, मैं जो कुछ कहती हूं उसे सुनो नेवाजी। बलवन्ती कोई दूध-पीती बच्ची तो है नहीं, मैं कैसे समझाऊँ उसे, मेरी समझ में नहीं आता? तुम अपना घरौना कहीं और कर लो, यही अच्छा है।'

किन्तु नेवाजी अपनी बात पर अड़ा रहा वह तनिक भी नहीं डगमगाया। वह जोर देकर बोला—'काकी। मैं जानता हूं कि अगर तुम चाहोगी तो बलवन्ती मेरे मसौदे पर कभी इन्कार नहीं कर पायेगी। आखिर हर्ज ही क्या हैं, उससे बात तो करके देखो। मेरा उससे इस बारे में कुछ भी कहना, शोभा नहीं देगा। तुम माँ हो, तुम्हारे मुँह सब कुछ अच्छा लगेगा।'

अब हरदेई पसोपेश में पड़ गई। वह हैरान होकर बोल उठी—'अच्छा तो तुम जाओ, मैं बालो से बात करूँगी। फिर बताऊँगी तुम्हें कि वह क्या चाहती है?'

नेवाजी को आते ही मालूम हो गया था कि बलवन्ती घर के लिए कुछ सौदा खरीदने गई है। अतः वह वहां अधिक नहीं रुका, दस-पाँच मिनट बैठ कर चल दिया।

बलवन्ती जल्दी घर आ जाती लेकिन रास्ते में उसकी बचपन की सहेली यमुना का घर पड़ता था। वह दरवाजे पर खड़ी थी, बलवन्ती को जबर्दस्ती अपने घर खींच ले गई।

इधर नेवाजी के जाने के बाद हरदेई गहरे विचारों में डूब गई। उसे अचम्भा सा लग रहा था कि नेवाजी की लगन बलवन्ती पर ही क्यों है? कहीं इसीलिए तो उसने जमालो को संखिया देकर नहीं मार डाला है! लड़की वाले ब्याह और घरौने के लिए दूसरे के दरवाजे पर जाते हैं; मगर लड़के वाले कहीं नहीं जाते। यह तो बिल्कुल उल्टा है।

नेवाजी को तनिक भी संकोच नहीं लगा मुझसे बात करने में। अरे ऐसा ही था तो खुद न आकर मुहल्ले के किसी बड़े बूढ़े को मेरे पास भेज देता। अपने मुँह मियां मिट्ठू बनना उसकी जलम (जन्म) की आदत है, इसीलिए तनिक भी हया शर्म नहीं हैं उसमें। खैर मैं बालो से उसकी बात कहूंगी, अगर वह राजी हो गई तो अच्छा ही है, नुकसान क्या है? नेवाजी के घर में पैसा है, बालो की तकदीर खुल जायेगी। बालो सुन्दर है, मुझे विश्वास है कि नेवाजी उसका आदर करेगा। जमाल्लो में एक साथ ही कई ऐब थे। वह कुरूप थी, कर्कशा थी और थी अपने विहाता आदमी को छोड़ कर आई हुई एक ओढ़री।

हरदेई का विचार-चक्र प्रबल वेग से घूम रहा था। उसका ध्यान तब तक नहीं भंग हुआ, जब तक बलवन्ती घर में नहीं आई। वह आगई और दरवाजे पर से ही पुकारा--'माँ सरसुता को लो, जब से गई है गोद में ही लदी है। मुझे बहुत हैरान करती है यह। यह कहते-कहते वह माँ के पास आ गई और सरसुता को उसकी गोद में दे दिया।

× × ×

बलवन्ती चूल्हे के पास बैठी आटा छान रही थी। बटलोई में दाल चढ़ी थी जो फुदुर-फुदुर चुर रही थी। हरदेई उसके पास जाकर बैठ गई और दो एक बातें इधर-उधर की करने के बाद कहने लगी--'अभी जब तुम पसारी के यहां गई थी बालो तब नेवाजी आया था।'

बलवन्ती ने सहज ही माँ की बात सुनकर कह दिया--'आया होगा वह तो आता ही रहता है।'

इस पर हरदेई बात पर जोर डालती हुई बोली-'आया होगा नहीं, बालो, वह कुछ कह गया है।'

'क्या माँ? क्या कह गया है नेवाजी, कोई खास बात है क्या?' बलवन्ती प्रश्न करने के साथ अपने स्थान से कुछ उचक गई और माँ की ओर देखने लगी।

हरदेई पुत्री के और निकट सरक आई और गोसे की बात कहने लगी--'बालो ! नेवाजी जो कुछ कह गया है हालांकि वह सुनते ही तुम बिगड़ने लगोगी और अगर जमालो होती तो तुमसे पहले मैं चौंकती; लेकिन अब तुम्हें अपनी जिद छोड़ देनी चाहिए। भलाई इसी में है कि .....।'

'कुछ कहोगी भी माँ या दुनिया भर का वितान ही बांधती रहोगी कौन सी ऐसी बात है, जिसे तुम बहुत घुमा-फिरा कर कहना चाहती हो ?' बलवन्ती की जिज्ञासा इतनी तीव्र हो उठी थी, कि वह माँ की बात बीच में ही काट बैठी।

हरदेई के पोपले मुख पर गहरा भाव उतर आये और स्वर भी गरूआ हो उठा। वह कहने लगी--'मेरी बात मानो बालो, नेवाजी की चूड़ियाँ पहन लो ! मैं ...।'

'क्या कहा मां, मैं नेवाजी की चूड़ियाँ पहन लूं ? यह कभी नहीं होगा ! क्या यही कहने आया था वह ? मालूम होता है कि मीठी-मीठी, बातें करके वह तुमको पिघला गया है। तभी तुम ऐसा कह रही हो !' बलवन्ती एक सांस में ये सारी बातें कह गई। क्रोध से उसके नथुने फुरकने लगे और अपने में वह अधीरता का अनुभव करने लगी।

हरदेई पुत्री के स्वभाव को भली-भांति जानती थी। अतः वह शान्त स्वर में धीरे-धीरे कहने लगी —'गुस्सा करने से पहले तुमको यह सोचना चाहिये बालो; अगर इस बस्ती में तुम्हारे लिए किसी से खतरा है तो वह नेवाजी से ही है। उसका झुकाव तुम्हारी ओर हुआ है तो हम लोगों की इन्कार उससे वही काम करवा सकती है, जो लखनऊ में उस बंगाली ने तुम्हारे साथ किया था। बात मान लो, मैं जानती हूं कि नेवाजी तुम्हारा निरादर नहीं करेगा। वह तुम्हें सिर-आंखों पर बिठा लेगा, क्योंकि तुम में रूप भी है, और गुण भी।'

बलवन्ती गुस्से से, दांतों से होंठ चबाने लगी और आटा चालकर चलनी एक ओर रखती हुई कुछ कड़वे स्वर में मां पर व्यंग्य करती हुई बोली—'तो तुमने नेवाजी से हां कह दिया है क्या ?'

हरदेई सत्य को नहीं निगल सकी। वह अक्षरशः कहने लगी—'नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैंने तो अभी उसे टाल दिया है, यह कहकर कि बालो से पूछूंगी, देखो वह क्या कहती है ? तुम्हें समझा रही हूं, कि अगर तुम नेवाजी से साथ घरीना कर लो तो जिन्दगी भर चैन से बंशी बजाओगी !'

बलवन्ती चिढ़ी हुई तो थी ही, वह खीझकर बोली—'हां, क्यों नहीं ? चैन की बंशी बजाते-बजाते—जमालो तो यमलोक पहुंच गई और शायद मुझे जीते जी नरक भोगना पड़ेगा। तुमने खूब सोचा है माँ, अब जब नेवाजी तुम्हारे पास आये, तो उससे साफ-साफ कह देना, कि बलवन्ती रजामन्द नहीं है।'

हरदेई रुआंसी हो आई। उसका स्वर आर्द्र हो उठा और वह दुखी होकर कहने लगी—'जल्लाद के सामने सिर झुका लेना ही अच्छा है; क्योंकि जब जबर मारता है तो रोने भी नहीं देता। नेवाजी कसर रखने वाला आदमी है, उससे होड़ लेना आग से खेलना है मेरी लाडो। बात मान लो बच्ची, इसमें सबकी भलाई है।' बात समाप्त करते-करते हरदेई फफककर रो पड़ी और बलवन्ती को छाती से लगा, उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

बलवन्ती का क्रोध हिरन हो गया। वह भी रोने लगी और रोते-रोते बोली--'माँ ! क्या तुम मुझे अपने से दूर कर देना चाहती हो ? मैं तुम्हारा मन नहीं दुखाना चाहती जो नसीब में बदा है, वह होकर रहेगा। अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम्हारी बालो, अपने को कुर्बान कर देगी, चाहे सुख मिले या दुख। मैं तुम्हारा दिल नहीं तोड़ूंगी।'

पुत्री के मुंह से यह सुनकर हरदेई बाग-बाग हो उठी। वह उसे

अंक में समेटने का प्रयास करने लगी और बलवन्ती माँ के वक्ष से ऐसी चिपक गई, जैसे कोई दूध पीती बच्ची हो।

बहुत देर तक माँ बेटी का रुदन व्यापार चलता रहा। फिर जब दोनों के चित्त स्थिर हुये तो बलवन्ती सजग हो चूल्हे की ओर देखने लगी, लकड़ियां बुझ सी गई थीं। दहकते कोयलों पर राख की परतें जम रही थीं और बटलोई में चढ़ी हुई दाल से, भाप उठ रही थी। वह जल्दी-जल्दी लकड़ियां झाड़ने लगी और उनको करीने से रख चल्हा फूंकने में व्यस्त हो गई।

× × ×

वह दिन बीत गया और रात को जब हरदेई सो गई उस समय भी बलवन्ती जाग रही थी। वह सोच रही थी कि एक हिसाब से मां का सोचना भी ठीक है। नेवाजी से इन्कार करने का मतलब होगा उसमे बैर मोल लेना सो माँ उससे पहले ही आगाह हो गई, यह अच्छा ही हुआ। मैं भी क्या करती, अब तक तो जिद करती आई कि मैं किसी की भी चूड़ियां नहीं पहनूंगी, तब माँ भी मेरे पीछे इतना नहीं पड़ी थी। कभी-कभी समझाने जरूर लगती थीं। लेकिन इस वार उन्होंने समझाने की कोशिश के साथ-साथ मुझ पर पूरा-पूरा दवाब डाला और इस बात के लिये मजबूर कर दिया कि मैं नेवाजी के साथ घरौना कर लूं ?

इन सब बातों के साथ बलवन्ती का ध्यान जब नेवाजी की बुराइयों की ओर गया तो वह उनमें भी अच्छाइयां ढूंढ़ने की कोशिश करने लगी। उसने सोचा कि जिसके जैसे कर्म होते हैं वह वैसा ही भोग करता है, जो यह कहूं कि नेवाजी में सारे ऐब हैं, तो यह सरासर उसके साथ ज्यादती है। जमालो बहुत ही नटखट, और टेढ़े स्वभाव की औरत थी। रूप-कुरूप की बात तो पीछे रह जाती है सच तो यह है कि आदमी सबसे पहले गुण देखता है। कोई भी गुण तो न था जमालो में। फिर नेवाजी

उसके साथ अच्छा व्यवहार कैसे करता ! जैसे देव वैसी पूजा, मसल मशहूर है । मैं बिना मतलब अपने से बड़ा हो या छोटा किसी से नहीं उलझती । फिर जमालो की तरह दिन भर कतरनी की तरह जबान चलाना भी तो नहीं आता है । अब जब मेरा उसका देह का नाता होने जा रहा है तो — हरचन्द मेरी कोशिश यही रहेगी कि नेवाजी में इतनी तब्दीली आजाय कि जो लोग आज उसे बुरा कहते है, वे उसे आदर की निगाह से देखने लगें । मेरी सबसे बड़ी जीत यही है ।

रात बीतने जा रही थी । सरसुता भरपूर नींद में थी और हरदेई के भी छोटे-मोटे खुर्राटे कोठरी को आबाद कर रहे थे; किन्तु बलवन्ती की विचार धारा, टूटने का नाम ही नहीं ले रही थी ।

— ० —

१८

***

होली जलने से पूर्व ही हरदेई ने बलवन्ती को नेवाजी की चूड़ियां पहना दीं । इससे मुहल्ले में कुछ थोड़ी सी चखचख इस तरह की हुई कि बलवन्ती से नेवाजी का पुराना लगाव था । मालूम होता है कि कुछ स्याह-सफेद हो गया होगा तभी हरदेई ने उसके साथ बलवन्ती का घरौना कर दिया है । पहले बिरादरी वालों ने कितना समझाया कि बलवन्ती की अभी जवानी की उमर है, उसका घरौना किसी से कर दिया जाय तो अच्छा रहेगा । लेकिन तब न मां राजी होती थी और न बेटी । अगर कुछ दाल में काला न होता तो बुढ़िया यह स्वांग न रचती ।

यह थी मुहल्ले वालों की अपनी सूझ और समझ । और बलवन्ती नेवाजी के सम्पर्क में आकर एक क्षण के लिये भी सुख का अनुभव नहीं कर पाई थी । वह खून के आंसुओं से रो रही थी ; क्योंकि नेवाजी

हरदेई को अपने साथ अपने घर में रखने के लिए कदापि प्रस्तुत नहीं था।

घरौना के बाद बलवन्ती ने बहुत जोर दिया और नेवाजी को विवश किया कि वह हरदेई को अपने ही घर में रख ले। लेकिन नेवाजी ने साफ इन्कार कर दिया। उसका कहना था कि बुढ़िया को मैं अपने घर में नहीं रखूंगा। हां, अलबत्ता इतना जरूर कर सकता हूं कि रोटी, कपड़ा और उसकी कोठरी का किराया मैं देता रहूंगा।

बलवन्ती को नेवाजी की यह बात तनिक भी नहीं भाई और वह उसी दिन से उससे कुछ चिढ़ी-चिढ़ी सी रहने लगी।

घरौने का नया-नया उछाह था। अतः नेवाजी बलवन्ती को नाराज नहीं करना चाहता था। वह एक दिन हरदेई के पास अपना यह प्रस्ताव लेकर पहुंचा कि वह आजीवन उसे वृत्ति देगा। यह उसका कौल है, इससे पीछे नहीं हटेगा।

लेकिन हरदेई कहने लगी—'नेवाजी, बेटी का धन खाने का, मैंने कभी मन नहीं रखा है। वह बात और थी जब बाली मेहनत करके अपने साथ मेरा भी पेट भरती थी। अब उसका घर-दुआर हो गया है तो मैं दामाद की कमाई खाकर अपने को नरक में नहीं डालूंगी! अगर तुम कुछ करना ही चाहते हो, तो मेरे लिए इतना कर दो, कि जहां पर नीम के नीचे मैकू ने मेरे लिए फूस की झोंपड़ी बना दी थी, वहीं एक झोपड़ी बना दो उसी में पड़ी रहूंगी और पिसौनी-कुटौनी करके जिन्दगी के दिन काट दूंगी। बहुत कट गई है अब थोड़ी के लिये क्या झींकना!'

नेवाजी जोखू नहीं था और न था मैकू की तरह सहृदय ही। खाना पूर्ति करनी थी, वह उसने कर दी। और भार सा टालता हुआ बोला—'अच्छा, जैसी तुम्हारी मर्जी! बलवन्ती ने कहा था इसीलिये मैं तुम्हारे पास आया था। कल ही झोपड़ी बन जायेगी फिर उसी में चली जाना।'

नेवाजी चला गया बिल्कुल नपी-तुली बातें करके और जब घर

जाकर उसने बलवन्ती को सारी बातें बतलाई तो वह खूब रोई और रोते-रोते बोली—'अगर पहले से मैं यह जानती तो मुंह वा के लगाम नहीं लेती। मेरे रहते माँ को तकलीफ पहुंचे, यह मुझ से नहीं सहा जायेगा। आखिर हर्ज ही क्या है, उनको घर में रखने में ?'

नेवाजी एक दम गरम हो उठा। वह ताव में आ कर कहने लगा—'हर्ज हो या न हो, मैंने दुनिया भर का ठेका नहीं लिया है घरौना तुमने किया है उस अन्धी बुढ़िया का मैं जिम्मेदार नहीं हूं ! यही क्या कम है जो मैं उसके लिये करने जा रहा हूं। दुनिया मुँह छू देती है लेकिन अपने मुँह का नेवाला निकाल कर कोई किसी के मुँह में नहीं रख देता। मैं तो तैयार था उनको रोटी, कपड़ा देने को, लेकिन वह माने तब न।'

घरौने के बाद यह पहला अवसर था, जब बलवन्ती ने नेवाजी की आखों को लाल-पीली होते देखा था। फिर भी उसने साहस से काम लिया और अपने निश्चय पर दृढ़ रहकर बोली—'देखो मैं जाती हूं माँ, के पास वे मानेगी कैसे नहीं ?' कह बलवन्ती बाहर जाने का आयोजन कर आगे बढ़ी।

किन्तु यह क्या अभी उसने पहला ही कदम बढ़ाया था, कि लपक कर नेवाजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और झटक कर अपनी ओर खींचता हुआ बोला—'बलवन्ती यह नैहर नहीं ससुराल है। यहां पर तुम्हारा और तुम्हारी मां का नहीं, मेरा अदल चलेगा। खबरदार, जो घर के बाहर कदम निकाला।'

बलवन्ती गुस्से से पागल हो रही थी। फिर भी उसकी संज्ञा शून्य न होकर पूर्ण रुपेण जाग्रत थी। वह चुप साध कर रह गई और अन्दर कोठरी में जा फूट-फूटकर रोने लगी। अन्तर्मन कह रहा था कि नेवाजी आदमी नहीं जानवर है। उसके लिये सब धान बाइस पंसेरी है। जमालो बदसूरत थी, काली थी और कर्कशा थी। मैं रूप की गगरी हूं तो कौन

सा सिंहासन दे दिया है उसने मुझे ! नंगे आदमी के मुंह लगना, खुद अपने को ही बेइज्जती करवाना है। खूब धोखा खाया है मां ने और मुझे मेरे हक को पहुंचा दिया है। अब अगर मुंह खोलती हूं तो दुनिया तमाशा देखेगी और चुप होकर बैठ जाती हूं, तो बुढ़ापे में मां की दुर्गति होगी। पता नहीं, कौन सी सनक सवार थी उन्हें जो जान-बूझकर मुझे कुएं में ढकेल दिया। क्या करूं, सभी तरफ बाधाएं हैं। अगर नेवाजी से पल्ला तोड़ती हूं तो लोग मेरी ओर उंगली उठायेंगे और थू-थू करेंगे कि मैं इसी तरह अभी न जाने कितने घर बसाऊंगी न जाने कितने छोड़ूंगी। भगवान मुझे मौत दे देता, तो बहुत अच्छा होता इस नरक से मेरा उद्धार हो जाता ! मन की पीर को भीतर ही भीतर कब तक पीती रहूंगी ! इससे तो दिन-रात मेरा दम घुटता रहेगा और जिन्दा रहते हुये भी मैं मुरदे के समान रहूंगी।

बलवन्ती की आंखें रोते-रोते लाल हो गईं थीं। पलकों में कुछ सूजन दौड़ आई थी और वे इस प्रकार जल रही थीं, मानों किसी ने उनमें पिसे हुये, मिर्चें झोंक दिये हों। और ऐसी नेवाजी की नीति थी वह बलवन्ती को प्राप्त करना चाहता था, सो पा गया। अब हरदेई मरे या जिये, इससे उसे कोई भी सरोकार नहीं था।

झोपड़ी बन गई थी और हरदेई उसमें आकर बस गई थी। उसने अपनी वही पुरानी वृत्ति अपना ली थी; चक्की पीसना और पेट पालना। मुहल्ले वाले बुढ़िया पर तरस खाकर उसको पीसने के लिए अनाज देते और पिसाई में एक पैसा अधिक ही देने का मन रखते थे। इसी तरह उसको रोटियां सेक कर भी पड़ोस की स्त्रियाँ ही देती थीं।

हरदेई तरस-तरस कर रह जाती, लेकिन नेवाजी बलवन्ती को उसके पास फटकने तक नहीं देता था। यही नहीं यदि कभी हरदेई किसी स्त्री के द्वारा सरसुता को भी अपने पास बुला भेजती तो वह निर्दयी कठोर होकर कहने लगता कि अगर ज्यादा कलक है नानी को नातिन की; तो

फिर उसको अपने ही पास रखे। देश भर के मुरदे और नानामऊ का घाट। सरसुता भी मेरे लिए एक तरह से बोझा ही है। पालो, पोसो फिर ब्याह करो यह सब आखिर कौन करेगा। जोरू तो मर कर चला गया और अब यह बला मेरे गले पड़ी है।

मां के लिए जब नेवाजी कुछ कहता था तो बलवन्ती टाल जाती थी; लेकिन सरसुता के लिये वह एक भी शब्द सुनना पसन्द नहीं करती, इसलिए बीच में बोल पड़ती और नतीजा यह होता कि नेवाजी अन्दर से घर के किवाड़े बन्द करके बलवन्ती को कुचल-कुचल कर बेरहमी के साथ पीटता था। मारते-मारते जब वह थक जाता, तभी उसका हाथ रुकता था। बेचारी बलवन्ती खून का घूँट पीकर रह जाती। वह दिन रात अपने लिए भगवान से मौत मांगा करती थी।

और हरदेई जब पड़ोसिन के मुँह से अपनी बालो की इस छीछालेदर का हाल सुनती तो वह भी खूब रोती थी, और कभी कभी तो जब वह आवेश मे पागल हो जाती तो चिल्ला चिल्ला कर नेवाजी को गालियां देने लगती।

इस पर कई बार ऐसे मौके आये कि नेवाजी ने झोंपड़ी में आकर बुढ़िया को भी पीटा। तब मुहल्ले वालों ने उसे खूब धिक्कारा और कायल किया। लोग उससे कहते थे —'थू है, धिक्कार है तुम्हारी जवानी को नेवाजी। रोटी का एक टुकड़ा तो सास को दे नहीं सकते हो और उसके बूढ़े हाड़ फोड़ने चल देते हो। शर्म खाओ नेवाजी, दुनिया में रह कर अगर दुनिया से नहीं डरते हो, तो कम से कम भगवान से तो डरो ?

नेवाजी लोगों से लड़ने लगता और बड़बड़ाता हुआ अपने घर चला जाता।

इस तरह नेवाजी ने सारे मुहल्ले से दुश्मनी ठान रखी थी। वह कमीन था और कमीन से अगर कमीन कह दो तो वह बल्लियों उछलता है। यही हालत उसकी भी थी। उसके पास पैसा क्या था मानो साक्षात्

भगवान थे। तभी वह अपने को बिना ताज का बादशाह समझता था और जमीन पर पाँव न रखकर, आसमान पर चलने का मन रखता था।

हरदेई पानी पी-पी कर नेवाजी को कोसती थी। वह अब अपने अन्तर्मन में हमेशा ईश्वर से यही विनय किया करती कि नेवाजी को अपनी करतूतों का फल जल्दी मिले। उसकी देह में कोढ़ फूटे और अंग-अंग से चुये, और दुनिया उसकी ओर देखकर नफरत से मुँह घुमाले। तभी मुझे शान्ति मिलेगी; मेरे कलेजे की डाह ठण्डी होगी, उस समय मेरी मति मारी गई थी, नहीं तो वालो को इस कसाई के हाथ क्यों सौंप देती। भरी जवानी में उसको मौत आये। वालो की मुझे कोई चिन्ता नहीं है। वह अकेले कमाकर चार आदमियों का पेट भर सकती है, कहाँ से इस हत्यारे के पल्ले पड़ गई।

इधर हरदेई की यह स्थिति थी और उधर बलवन्ती, अनाचार का शिकार हो सूखकर काँटा हो रही थी। उसका रूप ढलने सा लगा था और देह में लगता था, कि जैसे बिल्कुल खून ही नहीं रह गया है। दिन पर दिन और महीनों पर महीने बीत रहे थे। फागुन में घरीना हुआ था और अब दूसरा फागुन भी बीतकर, चैती बयार डोलने लगी थी।

— ० —

१६

***

पाप का पेड़ जितनी जल्दी बढ़ता और पनपता है उतनी ही जल्दी वह भर-भरा कर गिर भी पड़ता है, इस पेड़ में जड़ें नहीं होती। पुण्य का बिरवा धीरे-धीरे बढ़ता है और उसकी जड़ें पाताल तक पहुंच जाती हैं। यह सही है कि इस कलिकाल में अधिकाँश लोग बेईमानी से ही बढ़ते हैं, फलते और फूलते हैं, किन्तु पुण्य उनको यों ही छोड़ नहीं देता।

उन पर अचानक दैवी प्रकोप आकर बरस पड़ते हैं और उनको अपने किये का दण्ड अवश्य भोगना पड़ता है। यद्यपि इस युग में अधर्म का बाहुल्य है; लेकिन धर्म अभी मर नहीं गया है। जिस दिन धर्म खो जायेगा, उसी दिन प्रलय हो जायेगी। नेवाजी आँखें खोलकर गुनाह करता था और तनिक भी नहीं डरता था। वह गुनाहों का देवता था, इसीलिए आसुरी प्रवृत्तियाँ उसे मनुष्यत्व से बहुत पीछे खींच लाई थीं।

बलवन्ती का अभिशाप हरदेई की पुकार और सिराजी की हाय एक रात को उस पर वज्र बनकर बरस पड़ी। बलवन्ती सो गई थी और सरस्वती उसके वक्ष से चिपटी नींद में खो रही थी। रात आधी हो गई थी, वह लघु शंका के लिए उठा, फिर वापस आ आँगन में बिछी चारपाई पर बैठ, एक बीड़ी मुँह में दाब, दियासलाई जला उसको सुलगाने लगा। दियासलाई की जलती हुई तीली उसने उपेक्षा पूर्वक पीछे की ओर फेंक दी और यह ध्यान नहीं दिया कि वह बुझ गई या जल रही है और कहाँ जाकर गिरी है?

बीडी के कश पर कश खींच, उसने अधजली बीड़ी भी, उसी ओर डाल दी, जिधर दियासलाई की तीली फेंकी थी। उसके बाद वह लेट गया और नींद ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया।

जलती हुई दियासलाई की तीली और बीड़ी आँगन के उस कोने में जाकर गिरी थी जहाँ चमड़े का ढेर लगा था और दफ्ती के पुट्ठों के ढेर रखे थे। चमड़े की अपेक्षा दफ्ती में आग जल्दी लगती है। घर के सब लोग सोते रहे और आग धीरे-धीरे सुलगती रही। इस पर जब भोर में पौ फटने के समय-हवा तनिक तेज होकर बहने लगी तो आग को बल मिला, उसमें लपटें उठीं और खूंटी पर टँगे हुये कपड़ों को छूने लगीं।

धीरे-धीरे लपटों का क्रम बढ़ता गया और वे अन्दर कमरों में भी प्रविष्ट हो गईं। देखते-देखते घर धू-धू करके जलने लगा। नेवाजी और बलवन्ती दोनों चौंककर जाग पड़े। वे घबड़ाकर बाहर भागे, क्योंकि

आग बेकाबू हो रही थी और अब नौबत यहाँ तक पहुंच गई थी, कि चट्ट-चट्ट करता हुआ चमड़ा जल रहा था, जिसकी चिड़ायंध सारे वातावरण में फल रही थी।

पड़ोसी जाग गये। लोग आग बुझाने का प्रयत्न करने लगे; किन्तु हवा का सहयोग पा, लपटें दून वेग से प्रचण्ड हो रही थीं। सारा घर जल रहा था। लोग इधर-उधर दौड़ रहे थे, फायर स्टेशन को टेलीफोन भी कर दिया गया था। जब तक आग बुझाने वाली मोटरें आईं तब तक धरती और किवाड़ों की भी यह गति हो गई कि वे ऊँची-ऊँची लपटों में जलने लगे। नेवाजी कलेजा पकड़ कर रह गया। वह बौखला सा गया था। लोग उसे समझा रहे थे लेकिन उसे ऐसा लग रहा था कि उसका सब कुछ लुट गया है, माल-मता और घर खाक हो गया है। उसका दिल बैठा जा रहा था और लग रहा था कि या तो अभी उसका प्राणान्त हो जायेगा या वह पागल हो जायेगा।

आग बुझाने वाली मोटरें घर के सामने लग गई थीं और लपटों पर पानी की बौछार हो रही थी। लगभग तीन-चार घण्टे व्यतीत हो गये, तब कहीं जाकर आग बुझ पाई। उसके बाद नेवाजी ने देखा, कि उसके घर के स्थान पर काला मलवा जमा है, जो पानी से तर है और उससे अब भी धुआं उठ रहा है। पड़ोस के दो तीन घरों पर भी आँच आई थी; मगर दमकलें आ जाने के कारण उनकी क्षति नहीं हो पाई। किन्तु नेवाजी का घर खाक हो गया था।

× × ×

जब मलवा हटाया गया तो नेवाजी के पल्ले कुछ नहीं पड़ा। फूल और पीतल के कुछ बर्तन और दो-एक गहने ही बच पाये थे। बाकी करेंसी नोटों में जमा की हुई उसकी पूंजी जलभुन कर खाक हो गई थी।

नेवाजी का सारा दर्प चूर-चूर हो गया। अब वह बलवन्ती को साथ

लेकर किराये का घर खोज रहा था। उस मुहल्ले में उसे कोई घर नहीं मिला, तब विवश होकर अनवर गंज चमरैया में, उसने किराये पर एक कोठरी ली और बलवन्ती सहित उसी में आकर आबाद हो गया।

नेवाजी को इतना सदमा पहुंचा था, कि दिन-रात वह पागलों की तरह सोचा करता, कि क्या से क्या हो गया ? मैं बड़े-बड़े सपने देख रहा था, लेकिन पता नहीं भगवान की क्या मर्जी थी, जो गुड़ दिखला कर ईंट मार दी। अब क्या करूँ मैं ? समझ में नहीं आता है कि आगे कैसी बीतेगी ? शायद दूसरों की मजदूरी करके ही पेट पालना होगा ! यह बिल्कुल सही है कि भगवान मिनटों में रंक को राजा और राजा को राह का फकीर बना देता है।

इस तरह नेवाजी दिन-रात खोया-खोया सा बना रहता। यद्यपि बलवन्ती उसे बहुत समझाती; लेकिन उसे यही लग रहा था, कि वह मामूली कारीगर ही जिंदगी भर बना रहेगा, ठेकेदारी अब नसीब होने की नहीं।

—०—

२०

नेवाजी अब फूलवाली गली के एक ठेकेदार के यहां काम करता था। दिन भर में दो-ढाई रुपये की मजदूरी होती थी इससे गृहस्थी का खर्च आराम से चल जाता था। बलवन्ती बहुत जोर देती। वह उससे कहती कि कुछ चप्पलें घर ले आया करो मैं भी सी लूंगी। लेकिन नेवाजी इसके लिए राजी नहीं होता था। वह रुआब के साथ बलवन्ती को जवाब देता कि मेरे नाखून नहीं गिर गये है जो मेरे रहते तुम दूसरों की मजदूरी करो। मैं जोरू नहीं हूं, मेरा नाम नेवाजी है। मैंने कमा कर खाया है और दूसरों को खिलाया है। अगर मैं तुमसे काम करवाऊँगा, तो मेरी शान को बट्टा लगेगा।

बलवन्ती नेवाजी के मुँह नहीं लगती, वह जानती थी कि यह उलझनी आदमी है, तनिक में ही बिगड़ जायेगा अगर खरी-खरी कह दूँगी कि पराई भूसी चिकने हाथ। जमालो अपने साथ रकम न लाई होती, तो यह बड़ा आदमी कैसे बनता। वह सोचने लगती, कि रस्सी जल गई है और ऐंठन फिर भी नहीं छूटी। नेवाजी के दिमाग से गर्मी अभी नहीं गई है, शायद वह अभी और सजा भुगतेगा।

बलवन्ती पहले तो विवश थी, क्योंकि नेवाजी दिन भर घर में रहता था। अतः वह माँ के पास नहीं जा पाती थी। लेकिन अब वह दिन भर घर से बाहर रहता था, इसलिये बलवन्ती मौका पाकर कभी-कभी माँ के पास चली जाती थी। नेवाजी को इस बात का पता नहीं चल पाता, नहीं तो वह बलवन्ती की हड्डी पसली तोड़ देता।

हरदेई का यह हाल था, कि अब वह बहुत शिकस्ताहाल हो गई थी, चक्की उससे नहीं खींची जाती थी, बहुत थोड़ा काम कर पाती थी। कभी-कभी उसे भूख से भी नाता जोड़ना पड़ जाता। किन्तु वह अपनी व्यथा किसी से नहीं कहती। बाहर वाला पराई पीर को देर में समझ पाता है, लेकिन आत्मीय उसमें तत्क्षण ही विज्ञ हो जाता है। बलवन्ती माँ की इस स्थिति को अच्छी तरह से जान गई थी। वह जब भी उससे मिलने जाती तो कभी रोटियाँ सेंक कर ले जाती, कभी गुड़ राब और मीठा आदि दे आती। कभी-कभी नेवाजी की अनुपस्थिति में वह बेसन और गेहूं के लड्डू बनाकर माँ के पास रख आती थी।

यद्यपि हरदेई बलवन्ती को इन सब कामों के लिए हमेशा मना करती रहती थी, मगर बलवन्ती का मातृ-प्रेम नहीं मानता। वह जिद करके चीजें रख आती और हरदेई कुछ भी नहीं कर पाती थी।

बुरी हो या भली बात कभी छिपती नहीं। जब तक भेद गुप्त रहता है, तब तक अन्तर्कार्य सम्पादित होते चले जाते है और जब रहस्योद्घाटन हो जाता है, तो विघ्नों की बाजार लग जाती है। इसी तरह नेवाजी

को बलवन्ती की करतूतों का पता चल गया। बस फिर क्या था, खुफिया विभाग की पुलिस की तरह वह बलवन्ती की देख रेख करने लगा।

आषाढ़ का महीना था। दोपहर को दो बजे बलवन्ती माँ के पास आई थी। आज वह अपने साथ पिसे हुये सत्तू और गुड़ लाई थी, दोनों माँ-बेटी में परस्पर वार्ता चल रही थी कि इतने में नेवाजी वहाँ आ धमका। आते ही वह बलवन्ती से पूछने लगा—'किससे पूछकर तुम यहाँ आई हो ? और इस पोटली में क्या है।'

प्रश्न करने के साथ ही नेवाजी ने गुड़ और सत्तू की पोटली उठा ली और उसको खोल कर, देखता हुआ बोला—'अच्छा, तो यह बात है। कमा-कमा कर मैं मरूँ और यह बुढ़िया मजा करे। मैं नहीं जानता था, बलवन्ती कि तुम घर फोड़ू निकलोगी। अब आज से मेरा विश्वास तुम पर से बिल्कुल उठ गया। ऐसे ही मैं बाहर बना रहूंगा और तुम एक दिन किसी की बाँह पकड़ कर, मेरा लोटा थाली लेकर उनके साथ चल दोगी। कमीनी औरत जमालो तुम से लाख गुनी अच्छी थी। वह घर का माल तो बाहर नहीं बहाती थी।'

बलवन्ती की रूह फना हो गई। वह भय से थर-थर काँप रही थी। जवाब देने के लिए इस समय उसके पास एक भी शब्द नहीं था, क्योंकि वह स्वयं गुनाह करते पकड़ी गई थी। ऐसी ही स्थिति थी हरदेई की, उसकी साँस जहाँ की तहाँ ही रुक गई। वह अपनी अन्धी आँखों को एक टक सामने की ओर किये बैठी थी।

नेवाजी ने खींचकर एक लात बैठी हुई बलवन्ती की पीठ पर मारी और कर्कश स्वर में बोला—'चल, हरामजादी, घर चल तब तेरी चमड़ी उधेड़ता हूं !'

बलवन्ती काँप कर रह गई और नेवाजी बाल पकड़कर घसीटता हुआ, उसको झोपड़ी के बाहर ले आया।

सरसुता जोर-जोर से रोने लगी और हरदेई रोती हुई बाहर भागी। वह नेवाजी को पकड़ना चाहती थी और उससे कुछ कहना चाहती थी। लेकिन नेवाजी ने उसको इतनी जोर का धक्का दिया कि बुढ़िया चारों खाने चित्त गिर गई और चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी।

झोपड़ी के बाहर भीड़ इकट्ठी हो गई थी। सभी जिज्ञासा वश पूछ रहे थे, क्या हुआ? बलवन्ती रो रही थी और नेवाजी उसको डाँटता हुआ, कह रहा था—'सुअर की बच्ची, इसीलिये मुझसे रोज कहा करती थी कि माँ को बुला कर अपने पास रख लो! बुढ़ापे की देह है, उससे काम नहीं होता है। मैं इतना मूर्ख नहीं हूं, जो इस बेधर्म बुढ़िया को अपने घर में रख लूं! सभी जातियों के टुकड़े तोड़ चुकी है यह! इसने अपना दीन दे दिया है तो मैं दीन देकर, अपना जन्म क्यों अकारथ करूँ?'

इस तरह बड़बड़ाता हुआ नेवाजी, बलवन्ती को घसीटता हुआ, अपने साथ घर की ओर ले चला। सरसुता माँ के पीछे-पीछे भाग रही थी, और भीड़ का आलम थोड़ी दूर तक, इन लोगों के पीछे-पीछे आकर, अब लौटने लगा था। बलवन्ती लाज और शर्म से झुकी हुई शान्त-भाव से नेवाजी के पीछे-पीछे चली जा रही थी।

× × ×

घर आकर नेवाजी ने बलवन्ती को इतना पीटा, कि उसकी सारी देह पर नीली-नीली सांटें उभड़ आईं। कई दिन तक, उससे उठा बैठा नहीं गया। बलवन्ती बहुत विवश थी। उसे अपनी दुर्गति की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। वह यह सोच-सोच कर मरी जा रही थी, कि मेरी माँ बे मौत मर जायेगी। कसकर मेहनत करने पर भी, जब इस जमाने में भर पेट खाने को नहीं मिलता है तो बिना काम किये उनको कौन खाने को देगा! बचपन और जवानी आदमी को नहीं खलते, तब उसके हाथ-पैर चलते हैं, लेकिन बुढ़ापा काटे नहीं कटता, वे लोग बड़े भाग्यशाली

होते हैं, जिनकी बुढ़ौती हंसते-बोलते बीत जाती है। मगर मां क्या करेगी, वह सब तरह बे सहारे है। ऐसे निर्दयी आदमी के साथ मुझको बाँध दिया है, जो आदमी के रूप में पूरा-पूरा कसाई है, निर्दोष भोली गाय को काटने में तनिक भी रहम नहीं खाता। घर जल गया, दौलत स्वाहा हो गई तो मैं यह सोचने लगी थी कि अब नेवाजी का दिमाग सातवें आसमान से उतर कर, जमीन पर आ गया होगा; लेकिन कूकुर धोने से कभी बछड़ा नहीं बन जाता। बुरा आदमी तो जिन्दगी भर बुरा ही बना रहता है। वह जल्लाद है, उसके सामने कुछ न बोलना ही अच्छा है।

इस प्रकार लगभग एक महीना बीत गया और बलवन्ती माँ के पास नहीं गई। नेवाजी अब इस ओर से पूर्णतया निश्चित हो गया था। वह मन ही मन सोचा करता कि महात्मा तुलसीदास बिल्कुल सही लिख गये हैं – ढोल गंवार और पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।' अगर मैं उस दिन बलवन्ती की पिटाई कसकर न करता, तो वह राह पर कभी नहीं आती अपनी माँ के पास रोज जाती, मार से भूत डरते हैं भूत, फिर आदमी की भला क्या हस्ती!

लेकिन बछिया गाय से चाहे जितनी दूर रखी जाय वह रंभायेगी और खूंटा उखाड़ने की कोशिश करेगी, फिर मौका पाते ही गाय के पास जरूर भाग जायेगी। ऐसे ही बलवन्ती एक दिन मौका पाकर माँ के पास गई। वहाँ हरदेई आते ही उससे कहने लगी अरे बालो, अपनी जान की खैर मना बच्ची, मेरे पास मत आया कर। नहीं तो वह हत्यारा नेवाजी तुम्हारी देह रुई की तरह धुन डालेगा और मेरे भी हाड़ तोड़ेगा। न आया करो रानी! समझ लो, तुम्हारी मां मर गई!'

'ऐसा न कहो मां' मरें तुम्हारे दुश्मन, तुम्हारा ही तो एक सहारा है, तुम्हारी आंखें मिचने पर नेवाजी मुझे जान से मार डालेगा। कई बहुत बेर मन है अभी और कुछ नहीं तो कम से कम तुम से कुछ बोल...

बहुत डरता जरूर है।' यह कहकर बलवन्ती मां के गले से लग गई औ फूट-फूट कर रोने लगी।

हरदेई के भी आँसू आ गये। वह सिसकियाँ भरती हुई पुत्री के सिर पर हाथ फेर धीरे-धीरे उसे समझाने लगी—'कलेजा पत्थर का कर लो बालो, अगर यह नहीं करोगी, तो एक दिन वह आयेगा, जब नेवाजी जमालो की ही तरह जहर देकर तुम्हारे भी प्राण लेगा। यह कलियुग है बच्ची। इसमें बेईमानी का बोल बाला है। मेरे पीछे अपनी छीछालेदर क्यों करवाती हो ? कसम खाओ बालो ! मेरे कलेजे पर हाथ रखकर कहो कि अब तुम कभी नहीं आओगी !' यह कह कर हरदेई पुत्री का हाथ पकड़ कर अपने वक्ष पर रखने लगी।

लेकिन बलवन्ती ने हाथ हटा लिया और बुक्का फाड़ कर रोती हुई बोली—'यह नहीं होगा माँ ? यह मेरे वश की बात नहीं है। नेवाजी मुझको जहर देकर मारे, मैं इससे पहले ही फांसी लगा लूंगी। क्या करूँ ममता नहीं मानती है, सरसुता का मुँह देखती हूं नहीं तो मैं, कब की दुनिया से चली गई होती।'

दोनों मां-बेटी रुदन व्यापार में व्यस्त थीं। सरसुता भी इन दोनों के निकट बैठी हुसक-हुसक कर रो रही थी। बाहर भादों के मेघ आकाश पर आकर मँडराने लगे थे। मां-बेटी का करुण-क्रन्दन देख, उनके पत्थर हृदय पसीज उठे, तभी उनकी आँखों से आँसू बरसने लगे, जो धरती पर मूसलाधार वृष्टि के रूप में टप-टप गिर रहे थे।

—०—

२१

***

स्वार्थपरता ऐसा जहर है कि उससे मनुष्य का बौद्धिक विकास रूक जाता है। अवसरवादिता का भागी बन जब वह अहम् को पालने और

कौड़ने लगता है तब उसको दैवी अभिशाप ऐसा ले डूबता है, कि ह न घर का रहता है, न घाट का। नेवाजी जितना उचक-उचक कर चलता था उतना ही समय के थपेड़े उसे पीछे ढकेल-ढकेल देते थे। पहले घर जला, उसमें वह पैसे से रिक्त हो गया, फिर दूसरे का काम करके जीविकोपार्जन करने की स्थिति में भी वह सीधी-राह नहीं चलता था। अन्याय और अत्याचार से उसने चोली और दामन का साथ बना रखा था। एक दिन वह आ गया कि बरसात में बाजार मन्दा होने के कारण जब उसे एक दिन काम मिलता तो चार दिन बेकार बैठना पड़ता था। अब नौबत यह आ पहुंची थी कि उसकी शान पानी भरने लगी। बलवन्ती को भी घर पर बैठकर चप्पलें सीनी होतीं, इस तरह रात दिन एक करके दोनों प्राणियों को खाना नसीब हो पाता था।

यह ऐसा समय था कि अगर एक पैसा की आमदनी होती, तो चार पैसे का खर्च सामने था। बचे हुए दो-एक गहने भी पेट की राह निकल गये। बलवन्ती गृहस्थी का फेर बांधने का पूरा-पूरा प्रयत्न करती; किन्तु एक न एक अभाव उसके साथ जुड़ा ही रहता था।

इसी तरह घर की गाड़ी खींचातानी के साथ आगे बढ़ रही थी। नेवाजी बलवन्ती पर दिन-रात खार खाये रहता कि वह कोशिश करके जितना अधिक से अधिक काम बाहर से प्राप्त कर सके; करे। क्योंकि ठेकेदार बरसात के मौसम में कारीगरों से सीधे मुँह बात नहीं करते हैं। यथाशक्ति बलवन्ती अपने प्रयत्न में पीछे नहीं थी।

नेवाजी के घर का यह हाल था और उधर हरदेई पर सहसा गाज सी आकर गिर पड़ी। बैठे बिठाये अचानक ही उसको पक्षाघात की व्याधि लग गई। उसका दाहिना अंग बिल्कुल शून्य पड़ गया था। न तो हाथ काम देता था और न पैर। वह न खड़ी हो सकती थी और न चल सकती थी। बलवन्ती को यह समाचार मिला तो उसने नेवाजी की बहुत मिन्नत की। उसने उसके पैर पकड़ लिए और नाक रगड़कर

बोली— 'तुम्हें भगवान की कसम अब ऐसी गिरी हालत में माँ को बुला कर अपने घर में रख लो। सोचो तो, जब उनका हाथ-पैर ही नहीं चलेगा, तो चक्की कैसे पीसेंगी। और जब दूसरों का काम नहीं करेंगी तो खाना कौन दे देगा। उनके हाल पर तरस खाओ, वे अब सब तरह अपाहिज हैं।'

नेवाजी पिघलना और पसीजना तो जैसे जानता ही नहीं था। वह गरज कर बोला—'फिर छेड़ा वही पुराना पचड़ा ज्यादा चिबिड़-चिबिड़ करोगी तो दाँत तोड़ दूँगा। जो बुढ़िया जात-कुजात के टुकड़े तोड़ चुकी है उसे लाकर मैं अपने घर में रखूं, यह कभी नहीं होगा। खबरदार, जो फिर कभी उसकी चर्चा मुझसे चलाई !' यह कहने के साथ उसने भिटककर बलवन्ती को अपने से दूर हटा दिया और जो मन में आया, वह बड़बड़ाता रहा।

बलवन्ती भयवश आगे कुछ नहीं बोली क्योंकि वह जानती थी, कि नेवाजी के मुँह लगना अपनी छिछालेदर करवाना है। वह वहीं बैठकर फफक-फफककर रोने लगी।

नेवाजी को यह सहन नहीं हुआ। वह उसके पास जा, लाल-लाल आँखें निकालकर बोला—'रो क्यों रही है, राँड की बच्ची। मैं मर गया हूं क्या ? जो मातम मना रही है।'

बलवन्ती आँचल से आँसू पोछने लगी। उसकी साँस जहां की तहां रुक गई। उसका हृदय क्षत-विक्षत होकर रह गया और सोचने लगी कि अब नेवाजी का जुल्म, यहाँ तक बढ़ गया है, कि हंसना और रोना भी मेरे वश का नहीं रह गया है। वह जब हँसाये तब हँसूं और जब रुलाये तब रोऊं, ऐसी जिन्दगी से मौत कहीं अच्छी है। लेकिन दुनिया का दस्तूर है कि मांगने से मौत भी नहीं मिलती। बहुत सोचती हूं कि गंगा में डूब मरूं या जहर खा लूं; मगर सरसुता का मोह मेरे पाँव बाँध देता है और मैं मजबूर होकर रह जाती हूं।

बलवन्ती अब हड्डियों का ढांचा मात्र रह गई थी। उसके कंकाल में प्राण अवश्य बोल रहे थे, किन्तु वह जिन्दगी से गई बीती हो चुकी थी, जिसने उसका हाथ पकड़ा था अगर वह साथ नहीं दे पाया, तो भी उसे शिकायत नहीं थी; लेकिन अब मन ही मन रोना और उस जालिम नेवाजी के सामने उधार हंसी लेकर, हंसना अहर्निश उसका कलेजा कचोटता रहता था। उसे लगता था कि अगर कुछ दिन यही हालत रही तो वह पागल हो जायेगी और फिर उसकी प्यारी सरसुता को नेवाजी जीते जी मार डालेगा।

× × ×

समय आगे भाग रहा था। पकड़ने वाले उसे पकड़ रहे थे। और खोने वाले खो रहे थे। आज कल बन रहा था और अंधेरे उजाले का अभिनय चल रहा था हरदेई इतनी अशक्त हो गई थी कि वह [illegible] हाथ से कौर तक नहीं तोड़ पाती थी। बैठे-बैठे [illegible] कर चलना, उसकी खुशामद करना उसकी दरामद करना, तब कहीं जाकर [illegible] वालों से रूखी-सूखी रोटी प्राप्त करना उसकी दिनचर्या बन गई थी।

झोपडी बिल्कुल नष्ट प्रायः सी हो गई थी। [illegible] भीग-भीग कर लकड़ी का सन्दूक सड़ गया था। उसके बर्तन और [illegible] पता नहीं कौन चुरा ले गया था। अब वह [illegible] की भिखारिन थी और दूसरों की दया पर जी रही थी।

आखिर मुहल्ले [illegible] से नहीं देखा गया। एक दिन कुछ [illegible] उसको साथ लेकर नेवाजी के पास गये और इस बात के लिए [illegible] दिया कि नेवाजी हरदेई को अपने [illegible] रक्खे।

इस पर नेवाजी क्रोध में आग बबूला होकर सबके [illegible] फटकार कर कहने लगा [illegible] तुम सब लोग मुझे बेवकूफ [illegible] हो क्या? तेली, तमोली, [illegible] और हिन्दू-मुसलमान [illegible] ठाँव की रोटियाँ खा चुकी है यह [illegible] अब मुझे [illegible]

सो यह नहीं होगा ।'

लोग थू-थू करने लगे और नेवाजी को धिक्कारने लगे कि अपने को नरक का भागी क्यों बना रहे हो नेवाजी हम सब अन्धे नहीं हैं। हरदेई अपना मुहल्ला छोड़ कर कभी नहीं गई। फिर यह तुम कैसे कहते हो, कि वह बेधर्म हो गई है।

नेवाजी अपने सामने किसी की बात नहीं लगने देता था। वह जो मन में आता बके जा रहा था और हरदेई रो-रोकर अपनी सफाई दे रही थी, कि मेरी देह में, कोढ़ फूटे, कीड़े पड़े अगर मैंने कुजात की रोटियाँ खाई हों।

बहुत देर तक झंझट चलता रहा, लेकिन काले के आगे दिया नहीं जला। नेवाजी ने जब देखा कि लोग उसके पीछे हाथ धो कर पड़े हैं तो वह कोठरी के अन्दर आ गया और जल्दी से किवाड़े उढ़का, कुण्डी बन्द कर ली।

बाहर रोती हुई हरदेई को लोग अपने साथ चमनगंज की ओर लिये जा रहे थे और भीतर सिसकी भरती बलवन्ती को नेवाजी दाँत पीसकर डाँट रहा था। ऐसा लगता था कि यह कलयुगी रावण है, जो त्रेता के रावण के पैर का धोवन भी नहीं।

× × ×

भिक्षावृत्ति ही अब हरदेई के जीवन का एक मात्र अवलम्ब था। जाति-बिरादरी तथा मुहल्ले वाले कहां तक साथ देते। धीरे-धीरे यह स्थिति हो गई कि प्रातः बुढ़िया अपने स्थान से फिसलना शुरू करती और घिसलते-घिसलते एक महल्ले से दूसरे मुहल्ले में पहुंच जाती। जो कोई जो कुछ दे देता, वह उसे ईश्वरीय वरदान समझकर ग्रहण कर लेती। जैसा कि नेवाजी पहले कहा करता था कि बुढ़िया बेधर्म हो गई है, उसकी वाणी अब चरितार्थ हो रही थी। इस समय कुछ अंशों में हरदेई राह की भिखारिन थी। न तो कोई उसका आवास था, न कोई

आत्मीय और न कोई दोस्त-दुश्मन।

बलवन्ती मां की यह हालत सुन रो कर रह जाती थी और मन ही मन भगवान से मनाया करती कि किसी तरह मां की आंखें मिच जातीं तो वे इस नरक से छुटकारा पा जातीं।

लेकिन जब तक जिसकी जिन्दगी है, वह जीता है और उसे जीना पड़ता है। लोगों की धारणा ऐसी है, कि अमुक आदमी अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया फलां की इस दुर्घटना में मृत्यु हो गई, अरे वह भरी जवानी में मर गया। यह सब का भ्रम है। बिना मृत्यु के कोई नहीं मरता जब जिसकी मौत आ जाती है तब उसका कोई न कोई बहाना सामने आ जाता है। ऐसा लगता था कि हरदेई को अभी बहुत दिन जीना है।

दिन, सप्ताह और महीने बीतते जा रहे थे और हरदेई अपनी जिन्दगी का अन्तिम अध्याय पढ़ रही थी। वह स्वयं मौत चाहती थी इसीलिए मौत उससे दूर भागती थी। भाग्य की विडम्बना ही मनुष्य की कसौटी है। हरदेई अबला थी, अन्धी थी और अब अपाहिज भी थी। लकवा क्या लगा उसका बुढ़ापा नरक में जा पड़ा।

मकर संक्रांति आ लगी थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। चिल्ला के जाड़े का प्रभाव मनुष्य मात्र पर अपने पूर्णांशों में पड़ रहा था। कलेजा कंपा देने वाला जाड़ा पड़ रहा था। ओढ़ने-बिछाने के कपड़े की बात तो दूर थी, हरदेई के पास तन ढकने के लिए एक कपड़ा तक न था। एक फटा मैला कुचैला कपड़े का टुकड़ा, उसकी कटि में बंधा था, जो केवल जांघों तक सीमित था। इसके अतिरिक्त तार-तार हो रहा आधी बांह का सलूका उसके पेट और पीठ को ढांपे था। और कुछ भी नहीं था उस बेचारी के पास। अलुमीनियम का पिचका-पिचकाया कटोरा उसके साथ रहता और जहाँ वह लेट जाती और सो जाती वहीं उसका ठाँव था। यह सब ले-दे कर पूरी-पूरी भिखारिन थी।

कुछ ऐसा नियम है कि प्रकृति मनुष्य के अनुकूल हो कर भी कभी अनुकूल नहीं रहती। असमय और बिना मौसम की वरसात अवसर देखी देखी जाती है। चिल्ला जाड़े में जब तक बूंदाबांदी नहीं होती और टण्डी हवायें नहीं वहतीं तब तक लोग कहते हैं अभी जाड़ा पड़ा ही नहीं है!

माघ का महीना था। सर्दी खूब जोरों से पड़ रही थी। इस समय हरदेई की रक्षा भगवान ही कर रहे थे। किन्तु एक रात को आसमान पर बादल घिर आये और सवेरा होते-होते वह नन्हीं बूंदों में वरसने लगे। हरदेई बूंदों से बचने के लिए छाया ढूँढने लगी, किन्तु उस बदनसीब को यह नहीं पता था कि छाया उसका साथ उसी दिन छोड़ चुकी थी, जब उसकी आंखों से ज्योति चली गई थी। वह गन्दी, घिनौनी भिखारिन बुढ़िया जब किसी के चबूतरे पर जाकर बैठ जाती, तो लोग उसे दुत्कार कर वहां से भगा देते थे।

हरदेई कहीं भी अपनी सुरक्षा नहीं कर पाई और दोपहर होते-होते गरजते हुए मेघ, मूसलाधार वृष्टि में वरसने लगे। वह भीगती रही और भीगते सर्दी से अकड़ कर सड़क पर ही बैठकर रह गई।

नेवाजी अब काम पर जाने लगा था, क्योंकि सहालगें आ गई थीं, चप्पलों का काम बहुत अच्छा चल रहा था। वह प्रातः ठेकेदार के यहां चला जाता दोपहर के लिए रोटी अपने साथ बांध ले जाता था और रात को घर लौटता था। फिर वही पुरानी अकड़ उसमें समा गई थी और वह बलवन्ती को काम नहीं करने देता था। अतः बलवन्ती दिन भर घर में बेकार रहती थी, समय उससे काटा नहीं कटता था।

एक दिन दोपहर को बलवन्ती को यह खबर मिली, कि हरदेई आज लगातार दो दिन से पानी में भीग रही है, उसके हाथ-पैर सर्दी से बिल्कुल अकड़ गये हैं। पहले तो घिसल लेती थी लेकिन अब उससे हिला डुला भी नहीं जाता है। पत्ते की तरह उसकी सारी देह थर-थर कांप रही है।

यह सुनते ही बलवन्ती नेवाजी का सारा भय भूल गई, रोती हुई चमनगंज गई। पानी अब भी बरस रहा था। उसने एक रिक्शा किया और गोद में उठाकर मां को उसमें बैठा अपने घर ले आई।

घर लाकर बलवन्ती ने हरदेई के हाथ-पैरों में रुई के पहल से खूब सेंक किया फिर गर्म-गर्म एक गिलास दूध उसे पिलाया। अब जाकर हरदेई की जान में जान आई।

बलवन्ती ने तसले में कोयले डाल कर आग प्रज्वलित कर रखी थी। आँच पाकर हरदेई का जाड़ा छूटा, तब उसे बोध हुआ कि वह धोती और सलूका पहने है। वह बोली—'बालो! यह तुमने क्या किया मुझे मर जाने क्यों नहीं दिया पगली! तू नहीं जानती कि जब नेवाजी मुझे यहाँ देखेगा तो उसी वक्त घसीटकर बाहर ढकेल देगा। और तूने जो यह धोती और सलूका पहना दिया है वह भी उतरवा लेगा अपनी खैर मना बच्ची, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दे। बस अब जाने दे वह चण्डाल आता ही होगा। मैं बहुत डरती हूं कि आते ही वह तुम्हें पीटने लग जायेगा।'

इस पर बलवन्ती रो कर कहने लगी—'एक दिन मरना तो है ही माँ वह जान ही तो लेगा बस इसके अलावा और क्या कर सकता है? मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी चाहे वह मेरी देह के टुकड़े-टुकड़े कर डालें।"

बात समाप्त कर बलवन्ती फूट-फूट कर रोने लगीं। हरदेई ने उसे बहुत समझाया, लेकिन वह नहीं मानी उसको घर से नहीं जाने दिया।

पानी की गति यह थी कि तनिक देर के लिए रुक जाता, आसमान बिल्कुल साफ हो जाता, हल्की फीकी धूप चमकने लगती और थोड़ी ही देर बाद एकदम अन्धेरा झुक आता और मूसलाधार वृष्टि होने लगती। रात को नेवाजी घर आया। उसने देखा कि कोठरी में हरदेई बैठी है और बलवन्ती उससे हँस-हँस कर बातें कर रही है।

नेवाजी के क्रोध का पारावार न रहा। बस वह सबसे पहले हरदेई

कुछ ऐसा नियम है कि प्रकृति मनुष्य के अनुकूल हो कर भी कभी अनुकूल नहीं रहती। असमय और बिना मौसम की बरसात अवसर देखी देखी जाती है। चिल्ला जाड़े में जब तक बूंदाबांदी नहीं होती और ठण्डी हवायें नहीं बहतीं तब तक लोग कहते हैं अभी जाड़ा पड़ा ही नहीं है!

मांघ का महीना था। सर्दी खूब जोरों से पड़ रही थी। इस समय हरदेई की रक्षा भगवान ही कर रहे थे। किन्तु एक रात को आसमान पर बादल घिर आये और सबेरा होते-होते वह नन्हीं बूंदों में बरसने लगे। हरदई बूंदों से बचने के लिए छाया ढूंढने लगी, किन्तु उस बदनसीब को यह नहीं पता था कि छाया उसका साथ उसी दिन छोड़ चुकी थी, जब उसकी आंखों से ज्योति चली गई थी। वह गन्दी, घिनौनी भिखारिन बुढ़िया जब किसी के चबूतरे पर जाकर बैठ जाती, तो लोग उसे दुत्कार कर वहां से भगा देते थे।

हरदेई कहीं भी अपनी सुरक्षा नहीं कर पाई और दोपहर होते-होते गरजते हुए मेघ, मूसलाधार वृष्टि में बरसने लगे। वह भीगती रही और भीगते सर्दी से अकड कर सड़क पर ही बैठकर रह गई।

नेवाजी अब काम पर जाने लगा था, क्योंकि सहालगें आ गई थीं, चप्पलों का काम बहुत अच्छा चल रहा था। वह प्रातः ठेकेदार के यहां चला जाता दोपहर के लिए रोटी अपने साथ बाँध ले जाता था और रात को घर लौटता था। फिर वही पुरानी अकड़ उसमें समा गई थी और वह बलवन्ती को काम नहीं करने देता था। अतः बलवन्ती दिन भर घर में बेकार रहती थी, समय उससे काटा नहीं कटता था।

एक दिन दोपहर को बलवन्ती को यह खबर मिली, कि हरदेई आज लगातार दो दिन से पानी में भीग रही है, उसके हाथ-पैर सर्दी से बिल्कुल अकड़ गये हैं। पहले तो घिसल लेती थी लेकिन अब उससे हिला डुला भी नहीं जाता है। पत्ते की तरह उसकी सारी देह थर-थर कांप रही है।

बीच बचाव करता। क्योंकि एक तो दांत किटकिटाने वाली सर्दी और दूसरे पानी का वेग। वह कह रहा था—'तुझको निकाल दूँ, बक-बक बहुत कर रही है, ला पहले तेरा मुंह ही क्यों न तोड़ दूं?' यह कहने के साथ नेवाजी ने कस कर एक लात बलवन्ती के मुंह पर मारी वह तिलमिला कर औंधे मुंह गिर पड़ी। होंठ कट गये थे और नाक फूट गई थी। कोठरी की कच्ची जमीन खून से नहा गई।

अब नेवाजी हरदेई को घसीटकर चबूतरे पर ले गया और निर्दयता के साथ उसको सड़क पर ढकेल दिया।

हरदेई की हड्डियाँ चिटक कर रह गई और उसके मुंह से खून बहने लगा, जो पानी में मिलकर मटमैला होने लगा।

नेवाजी चोट खाये हुये नाग की तरह कोठरी की चौखट पर खड़ा था। अन्दर बलवन्ती अचेत पड़ी थी और बाहर हरदेई अभी तक सांस नहीं ले पाई थी। पानी बरस रहा था बादल गरज रहे थे और हवा इतनी तेज हो गई थी, मानो आँधी चल रही हो।

× × ×

रात बीत गई और सवेरे जब मुहल्ले वालों ने हरदेई को सड़क पर पड़े देखा, तो वे नेवाजी को धिक्कारने लगे। दो चार और औरतें आदमी उसके घर गये और उन्होंने उसकी खूब लानत-मलामत की। लेकिन नेवाजी ने किसी को कुछ भी जवाब नहीं दिया। ज्यादा भीड़ बढ़ती देख उसने कोठरी के किवाड़ बन्द कर लिये तब हार मान क लोग चले गये।

उस दिन नेवाजी काम पर नहीं गया। वह सारे दिन कोठरी में ही बैठा रहा। पानी बरसता रहा और हरदेई भीगती रही। रात भर भीगते-भीगते बुढ़िया ठण्ड से अकड़ गई थी। सर्दी उसके कलेजे में समा गई थी और वह धीरे-धीरे सन्निपात को प्राप्त हो गई।

दिन भर वह ज्ञान-बाई में ही रही। लोगों ने उसको उठा कर

पर झपटा और उसकी पीठ पर जोर से एक लात जमा, तेज गले से बोल 'सत्तर चूहे खाकर बिल्ली हज को चली है। क्या मुझे जात बिरादरी से बाहर करने की सोची है! चल निकल बड़ी आई है पाक-दामन बनकर।'

हरदेई कांख कर रह गई। अभी वह सम्भल भी नहीं पाई थी, कि नवाजी की दूसरी लात उसकी पीठ पर पुनः पड़ी, वह बिलबिलाकर रह गई और नेवाजी घसीटता हुआ उसको बाहर ले चला। बलवन्ती बीच में आगई। नेवाजी ने उसे पीछे ढकेल दिया और कड़ककर बोला— 'अभी तुम्हारी भी खबर लेता हूं, तुमने यह हिम्मत कैसे की, जो इस फकीरिन को घर में लाकर बैठाया।'

बलवन्ती गिर पड़ी थी। वह जल्दी उठकर खड़ी हो गई और क्रोधावेश में कहने लगी—"हां मैंने मां को लाकर बैठाया है तो कोई गुनाह नहीं किया। मार डाल पापी जान से लेकिन मैं माँ को घर से नहीं निकलने दूंगी!' यह कह कर वह हरदेई के पास आ गई और उसको अपनी ओर खींचने लगी।

नरनुला इतना डर गई थी, कि वह एक कोने में जाकर दुबक कर खड़ी हो गई और धीरे-धीरे सिसकने लगी। कोठरी के किवाड़े खुले थे, बाहर पानी आवाझोर बरस रहा था, हवा खूब तेज चल रही थी, जिससे खूंटी में टंगी लालटेन लुपलुपा कर रह जाती। नेवाजी ने हरदेई को छोड़ दिया। बाज सा वह बलवन्ती पर टूट पड़ा। वह पीट रहा था और बलवन्ती कह रही थी 'मार कितना मारेगा तू! अगर जान न ले ली, तो तेरा नाम नेवाजी नहीं! चाण्डाल, अगर मेरी माँ को घर से निकालता है, तो मुझे भी निकाल दे। फिर घर में रह कर, घी के दिये जलाना!'

नेवाजी का हाथ बलवन्ती पर बेरहमी के साथ बज रहा था। हो हल्ला, काफी जोरों पर था, लेकिन उस समय पड़ोस से कौन आता जो

बीच बचाव करता। क्योंकि एक तो दांत किटकिटाने वाली सर्दी और दूसरे पानी का वेग। वह कह रहा था—'तुझको निकाल दूँ, बक-बक बहुत कर रही है, ला पहले तेरा मुंह ही क्यों न तोड़ दूं?' यह कहने के साथ नेवाजी ने कस कर एक लात बलवन्ती के मुंह पर मारी वह तिलमिला कर औंधे मुंह गिर पड़ी। होंठ कट गये थे और नाक फूट गई थी। कोठरी की कच्ची जमीन खून से नहा गई।

अब नेवाजी हरदेई को घसीटकर चबूतरे पर ले गया और निर्दयता के साथ उसको सड़क पर ढकेल दिया।

हरदेई की हड्डियाँ चिटक कर रह गई और उसके मुंह से खून बहने लगा, जो पानी में मिलकर मटमैला होने लगा।

नेवाजी चोट खाये हुये नाग की तरह कोठरी की चौखट पर खड़ा था। अन्दर बलवन्ती अचेत पड़ी थी और बाहर हरदेई अभी तक सांस नहीं ले पाई थी। पानी बरस रहा था बादल गरज रहे थे और हवा इतनी तेज हो गई थी, मानो आँधी चल रही हो।

× × ×

रात बीत गई और सबेरे जब मुहल्ले वालों ने हरदेई को सड़क पर पड़े देखा, तो वे नेवाजी को धिक्कारने लगे। दो चार और औरतें आदमी उसके घर गये और उन्होंने उसकी खूब लानत-मलामत की। लेकिन नेवाजी ने किसी को कुछ भी जवाब नहीं दिया। ज्यादा भीड़ बढ़ती देख उसने कोठरी के किवाड़ बन्द कर लिये तब हार मान क लोग चले गये।

उस दिन नेवाजी काम पर नहीं गया। वह सारे दिन कोठरी में ही बैठा रहा। पानी बरसता रहा और हरदेई भीगती रही। रात भर भीगते-भीगते बुढ़िया ठण्ड से अकड़ गई थी। सर्दी उसके कलेजे में समा गई थी और वह धीरे-धीरे सन्निपात को प्राप्त हो गई।

दिन भर वह ज्ञान-बाई में ही रही। लोगों ने उसको उठा कर

नेवाजी के पड़ोस में ही एक दूसरे के चबूकरे पर लिटा दिया। एक ने बिछाने को टाट दे दिया और ऐसे ही एक बूढ़ी ने रहम खाकर एक फटी-पुरानी, कमरी उसको उढ़ा दी।

यद्यपि हरदेई अब पानी में भीग नहीं रही थी, लेकिन उसकी बौछार उस पर जरूर पड़ रही थी। दिन में मुहल्ले के घरों से कई स्त्रियाँ खाना लेकर आईं मगर हरदेई से नहीं खाया गया। तब एक दयालु पुरुष ने उसे थोड़ा दूध पिया या और रात होते होते वह घोर सन्निपात में आगई।

अब हरदेई उठ कर बैठ गई थी और सांय-पटांय बक रही थी। वह कभी कहती—'अरे वालो ! देखो जोख आया है जाओ तुम इसके साथ लखनऊ चली जाओ। बड़ा खराब है नेवाजी मेरी बच्ची को मारता है।'

और कभी यह बकने लगती कि बारात आ गई है, बाजे बज रहे हैं, गोले छूट रहे हैं। वाह ! आज मैं कितनी खुश हूं और क्यों न होऊँ ? आज मेरी बालो का ब्याह है।'

इस तरह हरदेई पता नहीं क्या-क्या बक रही थी। बलवन्ती कोठरी में बैठी सब सुन रही थी। यमराज सा नेवाजी नींद में खुर्राटे ले रहा था। उसने कोठरी में अन्दर से ताला बन्द कर रखा था और चाभी अपने कब्जे में कर ली, जिसमें बलवन्ती कहीं अपनी मां के पास न पहुंच जाय।

बलवन्ती बैठी आँसू बहा रही थी। वह सोच रही थी कि मालूम होता है, यह माँ का आखिरी समय है। वे बहकी-बहकी बातें कर रही हैं, शायद सर्दी में हैं, उन्हें सन्निपात हो गया है। सब नसीब की बलिहारी है माँ मर रही है और बेटी उसके पास तक नहीं फटक सकती। ईश्वर क्या तेरा यही इन्साफ है ? कहां तक ममाई करूँ ! जिसकी गोद में खेली और जिसका दूध पीकर बड़ी हुई वह दुनिया से जा रही है और मैं मरते समय उसके मुंह मे पानी की एक बूंद भी नहीं डाल

सकती ! यहीं नरक है यहीं स्वर्ग है। आदमी बड़े-बड़े सपने देखता है, लेकिन होता वही है जो मुकद्दर में बदा होता है।

नेवाजी सो रहा था। बलवन्ती के मन में कई बार बार आया कि वह चुपके से चाभी निकाल ले और ताला खोलकर माँ के पास पहुंच जाय; किन्तु वह ऐसा नहीं कर सकी और कर भी कैसे सकती थी; क्योंकि सीधा और सच्चा आदमी, इन दाँव और पेचों को कभी नहीं खेल सकता है।

पानी का शोर वेग के साथ बलवन्ती के कानों में समा रहा था। हरदेई अब भी अनाप-शनाप बक रही थी। अब उसके वाक्य टूट-टूट जाते थे। लगता था, कि उसकी शक्ति थक रही है और जबान लड़खड़ा रही है। वह कह रही थी—'अरे नेवाजी। तनिक यहाँ आ ·· आकर ज-मा-लो पू··· पुलिस ले-क-र आ-ई है।'

इसके बाद हरदेई ठहाका मारकर हंसने लगी और कहने लगी—'जा-ओ-था-ने-दा-र-जी प-क-ड़ ला-ने-वा-जी को औ-र भ-इ-या जो-खू तुम चु-प क्यों ख़-ड़े-हो। बा-लो रो-र-ही है ले-जा-ओ उ-से।'

बलवन्ती यह सुन-सुन कर सिसकियाँ भर रही थी उसका कलेजा नुचा जा रहा था और वह मन मार-मार कर रह जाती थी।

बहुत रात गये तक बलवन्ती बैठी रही हरदेई का बड़बड़ाना अब बन्द हो गया था। वह समझी कि शायद माँ सो गई है, या ठण्ड से ठिठुर कर, उसकी दांती बँध गई है, तभी वे चुप हो गई हैं। सहसा उसके मन में यह गुप्त आशंका आ घुसी, कि कहीं उनके प्राण पखेरू तो नहीं उड़ गये, जो वे हमेशा-हमेशा के लिये खामोश हो गई हों।

इस तरह बलवन्ती सारी रात जहाँ की तहाँ बैठी रहीं। उसका अन्तर्द्वन्द जलता रहा। प्रातः जब नेवाजी सो कर उठा। उसने ताला खोला और चबूतरे पर आकर देखने लगा कि बुढ़िया का क्या हुआ, तब बलवन्ती भी उसके पीछे आ लगी। हरदेई औंधे मुँह नाली में पड़ी

थी। गाती बन्द हो चुका था। लोगों की भीड़ लग रही थी और आवाजें आ रही थी, कि हरदेई मर गई। उसको नेवाजी ने आखिर मार ही डाला। बलवन्ती बुक्का फाड़ कर रोती हुई, माँ के पास पहुंची और उसके शव से लिपट फट-फट कर रोने लगी।

— ० —

२२

***

हरदेई की मृत्यु के बाद बलवन्ती कुछ दिन तक नेवाजी से बहुत चिढ़ी-चिढ़ी रही; लेकिन फिर धीरे-धीरे उसका दुख घटता गया और वह उससे हँसने बोलने बोलने लगी। गर्मी का मौसम आ पहुंचा था। यद्यपि नेवाजी अधिक नहीं कमा पाता था, मगर घर में शान्ति रहती थी। अब दम्पत्ति में कभी झगड़ा नहीं होता; क्योंकि उसकी बुनियाद हरदेई दुनिया से उठ चुकी थी।

आषाढ़ बरस रहा था। बलवन्ती गर्भवती थी। उसके गर्भ का पाँचवाँ महीना चल रहा था। नेवाजी यह जान कर बहुत प्रसन्न हुआ। वह अकेले में अक्सर सोचा करता कि जमालो इतने दिन मेरे घर में रही और उसके एक भी सन्तान नहीं हुई। बलवन्ती की तकदीर अच्छी है अब मैं जल्दी ही बाप बनूंगा। कितनी खुशी की बात है यह? वाकई बलवन्ती कितनी सीधी है। उसमें किसी किस्म का कोई ऐब नहीं है बुढ़िया हरदेई के पीछे मेरे घर में रोज-रोज हाय-हाय मचती थी। बहुत अच्छा हुआ, जो वह मर गई और बिना बयारी के ही जूना टूट गया।

बलवन्ती भी अपने में पूर्णतया सन्तुष्ट थी कि नेवाजी अब कितना सीधा हो गया है गुस्सा, तो उसे जैसे आता ही नहीं, पिछले दिनों में वह

मुझ पर खार खाये रहता था। शायद माँ का पिछले जन्म का दुश्मन रहा होगा।

इस भाँति घर में सुख शान्ति और सन्तोष की त्रिवेणी लहर रही थी। किसी से किसी को कोई शिकायत नहीं थी। घर में आनन्द बरस रहा था और सावन भी अपनी रिमझिम-रिमझिम बूँदों के साथ बरस कर धरती को तृप्ति दे रहा था। किन्तु सदा सुहागिन और सदा बहार के पेड़ों पर भी एक दिन पतझड़ आता है। बसन्त ऋतु हमेशा नहीं बनी रहती है। पतझड़ ही उसका परिवर्तन है और परिवर्तन ही मनुष्य की गति है। जिन्दगी का हर नया मोड़ एक परिवर्तन है, जिसमें विनाश भी है और विकास भी। बरसात के मौसम में चमड़ा बाजार की मन्दी चर्मकारों के लिए एक अभिशाप है। इसमें बड़ों-बड़ों के फेर बिगड़ जाते हैं, फिर एक मामूली कारीगर की क्या बिसात, जो वह खुलकर सांस ले सके और रात को सिर से पाँव तक चादर तानकर सो सके। नेवाजी के सपने धूल में मिलते जा रहे थे। मजदूरी का बुरा हाल था, फिर वही जैसा गत वर्ष मामला था एक दिन कमाकर चार दिन खाना पड़ता था। पिछले साल बलवन्ती चप्पलें सीती थी, तब अभाव बिल्कुल नहीं खलता था; लेकिन अब गर्भावस्था थी, इतनी मेहनत उससे नहीं होती जो घन्टों बैठकर चप्पलें सिलती रहे। नेवाजी हैरान हो उठा कि आखिर गृहस्थी का खर्च कैसे चलेगा। दीवाली बाद ही काम चलेगा, तभी मजदूरी होगी अभी जैसा चल रहा है वैसा ही चलेगा।

सबसे बड़ी चिन्ता नेवाजी को यह थी कि बलवन्ती के बच्चा होने वाला है, कुँवार या कातिक तक वह माँ बन जायगी। ऐसे हालत में, मैं सौर का खर्च कैसे निपटा पाऊँगा? बड़ी मुश्किल है आज का जमाना बहुत टेढ़ा है, कोई किसी को कर्जा भी नहीं देता है और ब्याज पर रुपये देने की रीति तो जैसे मिट ही गई है। महाजन लोग जेवर गिरवीं रखकर ही रुपया देते हैं। मेरे पास तो कोई गहना भी नहीं है, जिसको

इस समय अटका कर अपना काम निकाल लूंगा !

नेवाजी की चिन्ताएं दिन पर दिन बढ़ती जा रही थीं और समय की गाड़ी का पहिया द्रुत वेग से घूम रहा था। किसी तरह सावन बीता, भादों आया और अब कंवार के पितृ पक्ष आ लगे थे। बलवन्ती को भी नेवाजी की ही भांति अपने प्रसव की चिन्ता थी। वह भी प्रायः चिन्तित ही बनी रहती कि अगर सौर इसी महीने में हो गई, तो नेवाजी रुपये कहां से लायेगा और सौर का काम कैसे चलेगा ?

पति-पत्नी चिन्ता के सागर में गोते लगा रहे थे। बलवन्ती मन ही मन ईश्वर से विनय कर रही थी, कि कातिक बाद उसके बच्चा हो तो खींचा-तानी करके किसी तरह खर्च निपट जायेगा, क्योंकि तब नेवाजी की अच्छी मजदूरी होने लगेगी और नेवाजी यह सोच रहा था कि ऐसा लगता है कि दिवाली भी न हो पायेगी और बलवन्ती जच्चा बन जायेगी तो क्यों न ऐसा करूँ, उसे अपनी एक दूर की रिश्तेदारी की बुआ गांव में है, वहीं भेज दूं ? अभी जब भादों की अमावस को वे कानपुर गंगा नहाने आई थीं तो बलवन्ती का बढ़ा हुआ पेट देखकर, कह रही थीं, कि राम-राम करके नेवाजी यह मौका आया है, तुम्हें अगर तकलीफ हो, तो बच्चा होने के पहले बहू को गांव भेज देना, वहाँ मैं सब सम्हाल लूंगी ! और अगर तुम्हारा मन न हो तो एक चिट्ठी डाल देना, तो मैं चली आऊंगी, सौर निपटा दूंगी।

इसलिए अब नेवाजी को, उस अन्धेरे में वे बुआ ही सूरज की तरह रोशनी दे रही थी और उसने अपना निश्चय बिल्कुल दृढ़ कर लिया था कि नवरात्रि लगते ही, वह बलवन्ती को, बुआ के गांव नौबस्ता छोड़ आयेगा।

अपने निश्चय के अनुसार दूसरे ही दिन सरसुता, नेवाजी उसको गांव नौबस्ता में छोड़ आया और बलवन्ती नेवाजी की बुआ के साथ रहकर शान्ति पूर्वक दिन व्यतीत करने लगी। बुआ की अवस्था लगभग

पचास वर्ष की थी। उनके परिवार में आगे कोई न था। उनका स्वभाव भी बहुत मिलनसार था। वे बलवन्ती को सिर-आंखों पर लिये रहतीं और वह भी उनका बहुत अदब करती थी।

अभी क्वार चल रहा था, हल्की-हल्की गुलाबी ठण्ड हो रही थी। मौसम के प्रभाव से बलवन्ती को एक रात को मामूली सा ज्वर हो आया और जब तीसरे दिन उसकी देह पर चेचक के छोटे छोटे दाने निकल आये थे। जिन्हें देख बुआ एकदम चिल्ला उठीं—'अरे बहू! तुम्हारे तो देवी मैय्या निकल आई?' बलवन्ती के प्राण सूख गये। वह दानों की ओर देखती हुई उदास स्वर में बोली—'क्या बताऊँ बुआ? सब शीतला माता की मेहरबानी हैं उनकी इच्छा ऐसी ही होगी।'

इस पर बुआ ने बलवन्ती को उदास देख, आश्वासन भरी वाणी में कहा—'मन क्यों छोटा करती हो बहू? मेरे ख्याल से ये खेलनी पहाड़मती देवी हैं, ढाई दिन में बाग ले जायेगी। मैं अभी सवैय्या उतारती हूं और मालिन को बुलाये लाती हूं, कोई फिकर की बात नहीं है।

बुआ की बातों से बलवन्ती को बल मिला, परन्तु 'होंहि है वही, जो राम रचि राखा।' बलवन्ती को बड़ी चेचक निकली। बड़े बड़े फफोलों से सर्वांग छा गया। आंखों की पलकों में भी दाने निकल आये। नेवाजी को चिट्ठी छोड़ दी गई। अब बलवन्ती की यह स्थिति थी, कि उसे करवट लेना भी कठिन था। लाख बचाने पर भी छाले फूट फूट जाते थे और उनसे पानी बहकर, उसका बिछौना तर कर देता था।

छाले फूटते गये विस्तार बढ़ता गया और ग्यारह दिन के तेरह दिन हो गये। तब मालिन कहने लगी कि देवी बिरझा (मचल) गई हैं, शायद कुछ छुआछूत हो गई है! अभी कुछ दिन और लगेंगे सफाई का बहुत ध्यान रखो।

यह सुनकर बुआ और बलवन्ती बहुत घबड़ाई। बलवन्ती सिर उठा

उठा कर नेवाजी की राह देख रही थी और बुआ ने भी उसकी राह देखकर, दूसरी चिट्ठी डलवाई थी कि वह इस चिट्ठी को तार समझे और अगर वहाँ खाना खा रहा हो, तो पानी यहाँ आकर पिये।

दोनों पलकों पर के फफोलों में का जहरीला पानी उसकी आँखों में भर गया जिससे आँखें दुखने लगीं और वे कई दिन तक नहीं खुलीं।

पूरे तीन सप्ताह बाद बलवन्ती चेचक से मुक्त हुई। उसकी दोनों आँखों की ज्योति चली गई थी और सारे शरीर पर शीतला के दाग बन गये थे। वह अब भी नेवाजी के आने की प्रतीक्षा कर रही थी और बुआ ने उसको बुलाने के लिये, तीसरा पत्र भी छोड़ दिया था। पर गांव की डाक देर से पहुंची या नेवाजी की नीयत में फितूर आ गया, कौन जाने।

—०—

२४

***

दीवाली बीत गई और नेवाजी फिर भी नहीं आया तो बुआ ने स्वयं कानपुर जाने की ठानी। किन्तु दैव योग, जिस दिन वे जाना चाहती थीं, उसी दिन बलवन्ती ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। बुआ की तैयारी रुक गई और वे सौर कार्य में व्यस्त हो गईं।

जिस घर में मुद्दत बीत गई थी, न तो मंगल कार्य हुये थे और न कोई हँसी खुशी का अवसर ही था, वहाँ खूब ढोलक बजी, मंजीरे टुन टुनायें और सरिया-सोहरों की धूम मच गई। ऐसे उछाह के साथ शिशु का छठी संस्कार सम्पन्न हुआ।

बलवन्ती सोच रही थी कि वह अन्धी हो गई है, तो क्या पुत्र पाकर उसका जन्म सफल हो गया। नेवाजी अब फूला नहीं समायेगा वह उसको सिर-आँखों पर बिठा लेगा, इसी प्रसन्नता की लहरों में बहती

हुई बलवन्ती ने नेवाजी के पास चौथा पत्र भी भेज दिया।

जिस दिन नेवाजी को पत्र द्वारा पुत्र प्रसव होने की सूचना भेजी गई, उसी दिन अचानक बलवन्ती पर बज्रपात हो गया। बच्चा बीमार हुआ, उसका पेट चढ़ा और रोना एक क्षण के लिये भी बन्द नहीं हुआ। बुआ ने पुरानी रूढ़ियों से काम लिया। उनका कहना था कि बच्चे को जमोके ने धर दबाया है वह झाड़-फूंक से अच्छा हो जायेगा। वे नाउतो के पास दौड़ीं, उनकी मिन्नत की। नाउत आये झाड़-फूंक के खूब प्रयोग हुये। बतख लाई गई। उसने बच्चे को अपने पैरों में नहीं समेटा तो गाँव की स्त्रियाँ कहने लगीं कि लक्षण अच्छे नहीं हैं, अगर टटरी गोहार होती तो बत्तख बच्चे के ऊपर ऐसे बैठ जाती जैसे वह अपने अण्डे सेती है।

गांव की अपढ़ जनता क्या जाने की यह छूत की बीमारी है। नाल काटने में अगर सफाई से काम न लिया गया तो अक्सर शिशु को टिटनेस (जहरबात) हो जाता है, जिसे भोले-भाले ग्रामीण जमोके की बीमारी कहते हैं, वास्तव में वह जहरबात का एक रूप होता है। रात होते-होते बच्चे की सांसों का खेल समाप्त हो गया। बलवन्ती सिर धुन और छाती पीट कर रह गई और बुआ का भी मुँह तनिक सा निकल आया। वे सोच रहीं थी कि नेवाजी की बहू को मैंने हित के लिए बुलाया था और यहाँ आकर उसका अहित हो गया। अब मैं नेवाजी को मुँह कैसे दिखाऊंगी?

ऐसे ही बलवन्ती सोच-सोच कर हैरान हो रही थी कि मैं किसी दीन की नहीं रही। देवी (चेचक) निकली, सारी देह खुदरी हो गई, आँखें चली गईं और रही-सही आशा थी बच्चे की, वह भी गुड़ दिखला कर ईंट मार गया। नेवाजी बड़ा जालिम आदमी है। बनता देख वह आगे-आगे चलता है और बिगड़ी में साथ देना, तो जैसे उसने सीखा ही नहीं। चार चिट्ठियां जा चुकी हैं, मैं कैसे मान लूं कि उसे एक भी

नहीं मिली। उसे जब मालूम हुआ होगा, कि मैं अन्धी हो गई हूं तो खूब नाक-भौं सिकौड़ी होगी। लेकिन लड़का होने की खुशी में, उसे जरूर आना चाहिए था; क्योंकि वह मतलब परस्त आदमी है और मतलब ही उसका दीन है, उसका ईमान है। हो सकता है, चिट्ठी अभी न पहुंची हो। गांव की चिट्ठी, पूरे पखवारे के बाद ही शहर पहुंचती है।

इधर बलवन्ती यह सोच रही थी और उधर बुआ ने पांचवां पत्र नेवाजी के पास भेज दिया था, जिसका एक कोना फाड़ दिया गया था; क्योंकि उसमें उसके पुत्र की मृत्यु का सन्देश था।

× × ×

क्रमानुसार नेवाजी को सभी पत्र मिल गये थे। पहले जब उसने पढ़ा, कि बलवन्ती के चेचक निकली है और उसके बाद मालूम हुआ, कि उसकी दोनों आँखें चली गई हैं और सारी देह पर शीतला के दाग बन गये हैं और वह रूप-कुरूप हो गई है, तो वह बहुत चौंका और सोचने लगा, कि बलवन्ती अब मेरे काम की नहीं रही। वह अपने हक को पहुंच गई। बस बच्चा हो जाय, यही राह देख रहा हूं, अगर लड़की हुई तो उसको छोड़ दूंगा। वह गली-गली अपनी माँ, हरदेई की तरह भीख माँगती फिरेगी और अगर लड़का हुआ, तो एक कोने में पड़ी रहेगी।

इस तरह जब पुत्र होने का समाचार नेवाजी को मिला तो वह खुशी से फूला नहीं समाया। उसने यह तैयारी कर ली, कि कम से कम बच्चा पन्द्रह दिन का हो जाय, सौर निपट जाय, तो मैं जाकर बलवन्ती को ले आऊंगा। लेकिन जब उसको बुआ का भेजा अन्तिम पत्र मिला, तो उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। वह कानों में तेल डालकर बैठा रहा; कि बलवन्ती अपने भाग्य से जिये और अपने भाग्य से मरे मुझे उससे कोई मतलब नहीं है। मैं नहीं जाऊंगा उसे लेने, अंधी औरत आकर मेरे घर में अन्धेरा कर देगी। मैं अपना नया घर बसाऊंगा, बलवन्ती को घर में लाकर अपनी जिन्दगी गारत नहीं करना है।

नेवाजी अपने निश्चय पर दृढ़ था और बुआ को जैसे उठा बैठी लग रही थी, अतः कार्तिकी पूर्णिमा के स्नान पर एक पंथ दो काज के औसरे वह बलवन्ती के साथ कानपुर के लिए रवाना हुई। तब देहाती मेला गंगा स्नान के लिए सड़कों पर झांझ और मंजीरों के साथ भजन गाता हुआ चल रहा था बुआ और बलवन्ती लारी में बैठी थीं, अपने पीछे धूल के बादल छोड़ती हुई लारी, आगे बढ़ रही थी और बलवन्ती का हृदय धक-धक कर रहा था कि कहीं नेवाजी का मन उसकी ओर से फिर गया हो।

× × ×

नेवाजी दांव चूकना बिल्कुल नहीं जानता था,
'जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजे'

यह उक्ति उसके साथ हमेशा जुड़ी रहती थीं। बुआ के साथ बलवन्ती आई तब उसने उससे कुछ नहीं कहा। लेकिन जब बुआ गंगा स्नान कर अपने गांव वापस चली गई तो उसने खड़े-खड़े बलवन्ती को घर से निकाल दिया। उसका कहना था, कि जहां तुम्हारी आंख गई हैं और लड़का गया है, वहीं तुम भी चली जाओ, क्या करूंगा मैं घर में अन्धी औरत रखकर।

बलवन्ती धाड़ मार कर रोने लगी। सरसुता उसके पास दुबकी खड़ी थी। बाहर लोगों की भीड़ लगने लगी। यह देख नेवाजी ने अपने किवाड़ बन्द कर लिये।

बलवन्ती रो-रोकर कह रही थी—'अरे तनिक तो तरस खाओ, मैं अन्धी हो गई हूं तो इसमें मेरा क्या दोष! तकदीर की मार से कोई नहीं बचता है। तुम्हारा क्या लूंगी, एक तरफ पड़ी रहूंगी। अकेले मैं कहाँ भटकूंगी। सरसुता छोटी है, इस नन्ही सी जान पर रहम करो। किवाड़े खोलो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हाथ जोड़ती हूं, मुझे घर से मत निकालो।'

लेकिन नेवाजी जैसे सुन ही नहीं रहा था। वलवन्ती किवाड़ों पर हाथ पटक रही थी देहली प सिर धुन रही थी और मां को रोते देख रो रही थी सरसुता भी हो-हुल्ला सुनकर मुहल्ले के लोग बीच में आ गये। वे धिक्कार कर कहने लगे, कि अरे नेवाजी तू आदमी है या जानवर। अगर आज को तू ही अन्धा हो जाता तो बलवन्ती क्या दूसरा घर बसा लेती ? जब तक उसका रूप रहा तू उसके साथ चैन की बंशी बजाता रहा और आज वह कुरूप हो गई है तो तू उसे घर से निकाल देगा। यह कहां का इन्साफ है ? भगवान से डरो नेवाजी। उसके दरबार में एक दिन सबको जाना है। किवाड़े खोलो, और भलमंसी इसी में है, कि अपनी औरत को घर में रखो।

तब नेवाजी किवाड़े खोलकर बाहर निकला और तेज गले से बोला—'जाओ-जाओ अपना काम देखो, आये हो बड़े हिमायती बनकर। यह मेरा निजी मामला है। तुम लोग कौन होते हो दखल देने वाले ? मैं··· ।'

अभी नेवाजी इतना ही कह पाया था कि बलवन्ती भरभरा कर उसके पैरों पर गिर पड़ी और बिलख-बिलख कर रोती हुई बोली—'मैं तुम्हारी गाय हूं, मुझे वेसहारा न करो, मुझे अपनी कोई फिकर नहीं है, सरसुता की ओर देखो। क्या भीख के टुकड़ों से इसका गुजारा हो जायेगा ?'

'मैं इस सरसुता का बाप नहीं हूं। इसका बाप तो सुरपुर गया है, वहीं इसको भी भेज दो। मैंने दुनिया भर का ठेका नहीं लिया है ! और रह गई तू, तो कौन तूने मेरे साथ भाँवरें घूमी हैं, ओढ़री कहीं की ! तमाम रँडुये मिलेंगे, किसी के घर में जाकर बस जा !' कहकर उसने बलवन्ती को ढकेल दिया। इस पर भीड़ में खड़ी हुई स्त्रियाँ और पुरुष आगे बढ़ आये। वे थू-थू करने लगे और नेवाजी को धिक्कारने लगे। तब खिसिया कर नेवाजी, ने कोठरी में बाहर से तालाबन्द कर दिया और

वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गया।

× × ×

वलवन्ती बिलख रही थी। भीड़ समाप्त प्रायः हो चुकी थी। सरसुता चबूतरे पर दुबकी बैठी थी। दोपहर ढलने वाली लगी। वलवन्ती रोते-रोते थककर, किवाड़ों का सहारा ले, चौखट पर बैठ गई। बच्ची सहमे-सहमे स्वर में गोद में बैठी कहने लगी 'बड़ी जोर की भूख लगी है मां। चलो, मुझे रोटी दो, भीतर चलो।'

वलवन्ती की रूंधी हुई सिसकियाँ रुदन में बदल गयीं। वह बेटी को छाती से चिपका फफक-फफक कर रोने लगी। उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकल पाया। सोचने लगी कि मालूम होता है आज नेवाजी घर नहीं आयेगा। कब तक राह देखूँगी उसकी और कैसे मान लूँ कि वह मुझ को घर में रख ही लेगा, बहुत ही दुष्ट स्वभाव का आदमी है वह! जिस बात पर अड़ जाता है, फिर अपने मन की ही करके रहता है! मुझे उम्मीद नहीं है कि वह मुझ अन्धी को पनाह देगा। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? जब अपने मुँह मोड़ लेते हैं तो पराये भी साथ नहीं देते। सरसुता भूखी है, उसे कैसे समझाऊँ? मेरी देह पर कोई गहना भी नहीं है जो उसे बेचकर अपनी लड़की का पेट भरूँ? क्या होने वाला है मैं तो कहती हूं कि इस होनहार के पहले ही मैं, दुनिया से उठ जाऊँ। अपने पेट का सवाल बाद में है, सबसे पहले सरसुता को देखना है। छोटी सी बच्ची, आखिर कितनी देर तक अपनी भूख साधेगी। आज तक मैंने किसी से मांगा नहीं, हिम्मत नहीं पड़ती कि पड़ोसिन से कहूं, सरसुता भूखी है, इसे रोटी दे दो।

इस तरह वलवन्ती अपनी समस्या में उलझी रही और [illegible] रोते-रोते सरसुता उसकी गोद में ही सो गई। धीरे-धीरे दिन [illegible] और नीले आसमान पर हीरे जगमगाने लगे। किन्तु अन्धी [illegible] रात होने का बोध नहीं हुआ। उसका ध्यान तो तब [illegible]

सुता ने जगकर कहा—'रात हो गई माँ! और अब्बा अब तक नहीं आये? किवाड़े खोलो, घर में चलो, मैं बहुत भूखी हूं।'

अब बलवन्ती का माथा ठनका। वह समझ गई कि शायद मैं जब तक यहां बैठी रहूंगी, तब तक नेवाजी नहीं आयेगा। वह आयेगा भी, तो मुझे बैठा देखकर लौट जायेगा। यह सोचते क्षण बलवन्ती के मुंह से एक लम्बी थकी हुई सांस निकल पड़ी। उसने सरसुता की उंगली पकड़ी और धीरे-धीरे उठकर, सामने की ओर चल दी।

× × ×

सवेरे पड़ोसियों ने यह देखा कि नेवाजी की कोठरी खाली पड़ी थी। उसके दोनों पल्ले खुले थे और कुछ भी सामान नहीं था। बलवन्ती धोती सिर से पाँव तक ओढ़े हुए सरसुता को गोद से लगाये वहीं चबूतरे पर तनिक हटकर अब तक सो रही थी। एक स्त्री ने उसे जगाया और चौंकते हुए स्वर में बतलाया—'अरी जमूड़िन! तू सो रही है। नेवाजी रातो-रात घर खाली करके, पता नहीं कहाँ चला गया?'

बलवन्ती उठकर बैठ गई और माथे पर दोनों हाथ रख मुंह से एक लम्बी साँस छोड़ती हुई बोली—'मैं जानती थी बाई, कि वे जरूर चले जायेंगे, तभी तो सवेरे ताला बन्द करके भाग गये थे। हाय अब मैं क्या करूंगी? कहाँ जाऊँगी? मेरी लड़की भूखों मर जायेगी।' यह कहने के साथ रोने लगी। वहाँ पर बहुत सी स्त्रियाँ जुट आईं। वे आपस में चख-चख कर रही थीं, कि बेचारी का भाग्य फूट गया! रात को सरसुता भूख से बिलबिला रही थी, तो दुलारी जिजिया ने एक पनेथी दी थी, वही दोनों ने खाई थीं अब इनका भगवान मालिक है। बलवन्ती चुपचाप आंसू बहाती सबकी सुन रही थी। धीरे-धीरे पड़ोसी स्त्रियां दुनियादारी करके मौखिक सहानुभूति की नदिया बहाकर चली गईं और बलवन्ती के मस्तिष्क में भविष्य-चक्र की आंधी चलने लगी, तूफान की तरह एक विचार आता और चला जाता। उसका सन्तुलन

खो गया था। अस्थिरता उसे अधीर कर रही थी और वह सो । रही थी कि अपने साथ सरसुता की मिट्टी, क्यों पलीत करूँ ? इसे किसी अनाथालय को सौंप दूँ और अपना किनारा गंगा में कूदकर कर लूँ, मुझे इसी में गति दिखाई देती है। माँ की बात और थी, बुढ़ापे में उनकी आँखें गई थी, इस पर भी उनकी आखिर में कैसी छीछा-लेदर हुई। मेरी उम्र अभी पता नहीं कितनी है, मैं किस घाट उतरूँगी ?

इसके बाद ही बलवन्ती ऐसा सोचने लगी कि अपने रहते अपना बच्चा कोई किसी को नहीं देता है। सरसुता रो-रो कर अनाथालय की दीवारें हिला देगी, उसका कौन माई-बाप होगा वहाँ ? नहीं मैं उसको वहां नहीं भेजूंगी, उसके लिए मैं मेहनत मजदूरी करूँगी और जब तक वह सयानी नहीं हो जाती, तब तक मुझे जीना पड़ेगा। उत्तम-मध्यम जैसा भी बनेगा उसका व्याह करके ही मैं अपनी आँखें मींचूगी। क्योंकि दुनिया बड़ी जालिम है। मैं भी एक अन्धी मां की लड़की थी और लोगों ने मेरे साथ कैसा सलक किया ! यह मैं कभी नहीं भूल सकती। ऐसे ही मेरी बच्ची को भी, ये ढौंगी बिरादरी वाले बरगलायेंगे, उसकी जिन्दगी बरबाद करने की कोशिश करेंगे। इसके लिए बहुत जरूरी है, कि मैं जिऊँ, और सरसुता की जिन्दगी बनाने की कोशिश करूँ।

और बलवन्ती अपनी पुत्री के साथ वहाँ से उठते हुए सरसुता से बोली—'चलो सरसुता, दुलारी जिजिया के घर चलो, अभी तुम्हें रोटी दिलवाती हूं।'

सरसुता को रोटी दिलवाने का आश्वासन दे, बलवन्ती उसकी उंगली पकड़ दुलारी जिजिया के घर की ओर चल दी। वह सोच रही थी, नाक में सोने की कील है दुलारी को दूंगी रुपया-दो रुपया जो कुछ भी उसका मिलेगा, उससे सरसुता को कुछ दिन के लिए सहारा हो जायेगा तब तक मैं कोई न कोई इन्तजाम कर लूँगी।

बालिका का हाथ पकड़े अन्धी चली जा रही थी और इधर-उधर

वैठे हुये लोग जिज्ञासा वश, उसकी ओर देख रहे थे, कि अब देखो वलवन्ती कहाँ जाती है ?

—o—

२४

***

वलवन्ती की नाक की कील वीस आने की विकी। और इसके बाद घर-घर जाकर काम के लिए सबसे मिन्नत करने लगी कि कूटने और पीसने का काम मुझे दे दो। इसी वहाने मेरी बच्ची जी जायेगी। लेकिन हरदेई की तरह न तो वलवन्ती के पास झोपड़ी थी और न थी अपनी चक्की ही। फिर उसे काम कौन देता ? इसके अतिरिक्त एक वात यह भी थी, कि शहर गांव तो नहीं हो सकता, जहाँ धान, दालें और जौ आदि ओखली मूसल से कूटे जाते हैं। नगर में यह काम मशीनों द्वारा ही सम्पन्न होता है, ऐसी स्थिति में सिर्फ पिसाई ही सामने थी।

वलवन्ती सव ओर से निराश हो गई। दिन भर वह भटकती थी और रात को किसी के चबूतरे पर सो जाती। धीरे-धीरे पैसे खत्म हो गए, तब वह वहुत चिन्ता में पड़ी। उसके सम्मुख कोई भी निर्धारित मार्ग नहीं था। आखिर हार मानकर वह सरसुता के साथ सरसैया घाट जाने लगी। प्रातः से लेकर दोपहर तक वहां मंगतों की पंगत में वैठी रहती। वह भीख माँगती थी, यह उसका नित्य-प्रति का अब नियम वन गया था।

दोपहर को वलवन्ती घाट से लौटती। फिर उसी मुहल्ले में आती, वहीं एक किनारे वह उल्टी-सीधी रोटियां सेंकती जिसमें सरसुता का योग प्रधान रहता था। खा-पीकर दोनों माँ-वेटी फिर निकल जातीं

और कभी किसी सड़क पर, कभी किसी सड़क पर जाकर बैठ जाती। इस तरह शाम तक आने दो आने मिल जाते थे।

इतना सब था, लेकिन बलवन्ती ने अपना दीन नहीं दिया था। मुहल्ले में बिरादरी के घरों से अगर कोई रोटियाँ दे देता, तो वह ले लेती, मगर और कहीं वह यह नहीं कर पाती थी। ऐसा वह इसलिए कर रही थी, कि मैं बेधरम हो गई हूं इस। सरसुता को अपनी बहू बनाने में जाति वाले हिचकेंगे नहीं।

इस बीच मँगतों की मण्डली में और मुहल्ले में कई मनचलों ने बलवन्ती के सतीत्व के साथ खेलवाड़ करना चाहा। इसमें सबसे पहले उसके सामने प्रलोभन आये जिन पर उसने लात मार दी। वह खूब छकी हुई थी दुनिया से, इसीलिए दूध से जले हुए की तरह मट्ठा फूंक-फूंक कर पी रही थी। तत्पश्चात् साम दाम, दण्ड और भेद से लोगों ने काम लिया, किन्तु बलवन्ती तनिक नहीं फिसली, वह पाई भर भी विचलित नहीं हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग उसे तंग करने लगे।

पैसे बचाकर बलवन्ती ने एक हल्की सी लोहे की चद्दर का तवा, अलुमीनियम का कटोरा और अलुमीनियम की ही बटलोई छोटी सी थाली तथा एक लोटा खरीदा था। दूध-पूत की भांति वह इन बर्तनों को गठरी में बाँधे अपने साथ ही रखती थी और बलवन्ती के पास ओढ़ने बिछाने को कुछ भी नहीं था। एक फटा टाट बिछाकर वह सोती और एक ऐसा ही टाट ओढ़ती थी।

नेवाजी का कुछ भी पता नहीं था कि वह कहां जाकर अस्त हो गया। बलवन्ती को जब भी उसका ख्याल आ जाता तो वह मन ही मन जल-भुनकर कहने लगती, तुम्हारे कीड़े पड़ेंगे नेवाजी, त[illegible] की मौत [illegible] मरोगे तुमने मेरी जिन्दगी बरबाद कर [illegible]

नहीं दिया, मुझे मंझधार में छोड़ दिया, तो तुम भी सुख से नहीं बैठ पाओगे ?

रजाई और कम्बलों से जाड़ा न जाये चिल्ले के जाड़े का महत्व ही ऐसा है, कि इस पर भी, वह कलेजा कंपा दे। बलवन्ती रात भर ओस में पड़ी रहती सरसुता को पहले अपनी धोती उढ़ाती, फिर उस पर दोहरा करके टाट डाल देती, जिसमें कहीं उसे सर्दी न लग जाये। ऐसी स्थिति में उसे जुकाम हो गया, और होकर फिर अच्छा नहीं हुआ बिगड़ता ही चला गया जिससे खांसी की सृष्टि हुई, पहले सूखी इसके बाद इतना कफ आने लगा, कि लगता था, उसकी देह में सब कफ ही कफ भरा है। रात को जब सरसुता सो जाती तो उसे धक्की बाँधकर खांसी आती और वह घंटों बैठी हांफा करती।

इस पर भी बलवन्ती की दिनचर्या में तनिक भी अन्तर नहीं पड़ता था। वह नित्य नियम से सरसैया घाट जाती, उसके बाद सड़कों पर जाकर भीख माँगती। धीरे-धीरे उसे हल्का-हल्का सर्दी का बुखार भी रहने लगा।

और एक दिन जब दिन का सूरज बादलों की ओट में छिप गया और नन्हीं-नन्हीं बूंदों में जाड़ों की बरसात होने लगी, उस दिन बलवन्ती कसकर सर्दी खा गई। दूसरे दिन उससे उठा नहीं गया, वह वहीं पड़ी रही। उसकी देह तवा सी जल रही थी। वह जोर-जोर से हाँफ रही थी और बीच-बीच में खांसी की धक्की बँधने से वह बहुत परेशान हो गई।

दिन भर हल्की हल्की बूँदा बाँदी चलती रही। हवा तीर की तरह पैनी होकर बह रही थी। कल की बची हुई बासी रोटी खाकर सरसुता ने दिन पार कर दिया। उस दिन बलवन्ती उठकर भी नहीं बैठी। सरसुता भी सर्दी से ठिठुरी हुई माँ के पास बैठी रही। सांझ आई और अपने साथ इतने जोर की बरसात लाई कि कट-कट कर पानी बरसने

लगा। तेज सर्दीली हवा अब आंधी बन कर मचल रही थी। पानी का वेग कुछ थमते ही ओलों की बरसात आरम्भ हो गई। चबूतरा जिसपर बलवन्ती लेटी थी सारे का सारा पानी से तर हो गया। सरसुता भीगती हुई मां के पेट से लगकर, टाट में दुबक गई ओले गिरना बन्द होकर, छोटी बूँदे फिर मूसलाधार बन गईं।

अन्धेरा ऐसा झुका था कि मालूम होता था, सारा संसार अन्धेरा है, कहीं भी प्रकाश का नाम नहीं। तेज हवा के झोकों से तथा पानी और ओलों की बौछार से सड़क पर लगी बिजली की बत्तियाँ बुझ गई थी बीच-बीच में जब बिजली कड़क उठती तो कौंधे का अल्प प्रकाश जुगनु सा चमक कर रह जाता। जिस तरह अन्धेरे में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था, वैसे ही पानी इतने जोर का गिर रहा था कि एक-दूसरे की बात भी नहीं सुनाई पड़ सकती थी। बलवन्ती भीग रही थी, सरसुता उससे भयत्रस्त वाणी में कह रही थी—'भाग चलो माँ। मैं भीग गई हूं। कहीं और चलो मुझे भूख लगी है माँ।'

लेकिन इस समय बलवन्ती दूसरी दुनिया में थी। उसकी पसलियां धौंकनी सी चल रही थी। गले में कफ इतनी तेजी से चल रहा था कि सरसुता डर रहीं थी। बलवन्ती के हाथ पैर जहां थे वहीं पड़े थे। वह यहाँ तक अशक्त हो गई थी कि करवट बदलना तो दूर रहा, मुँह से बोल तक नहीं सकती थी। उसके मुँह और नाक से सांसों की हवा बाहर आ रही थी, वह गरम न होकर ठण्डी थी। एक ओर की दांती भिच गई थीं, आधा मुँह खुला था, जो कुछ विकृत सा होकर रह गया था। अबोध सरसुता मां की स्थिति को कुछ भी नहीं समझ पा रही थी। वह बार-बार अपनी बातें दोहराती, किन्तु जबाब कौन देता, बलवन्ती घोर सन्निपात में थी।

आंधी और पानी का क्रम अब भी नहीं टूटा था। रात का दूसरा

पहर व्यतीत होकर अब तीसरा धरती पर विचर रहा था। रात को बाहर खुली सड़क पर मौज से विचरने वाले मुहल्ले के कुत्ते, सायवानों और छज्जों आदि के नीचे बैठ कूँ-कूँ कर रहे थे। इस समय उनमें संघर्ष की भावना नहीं थी वे सर्दी और बरसात से परेशान हो रहे थे। कभी उनके स्वर तेज, बेसुरे रुदन में बदल जाते और कभी कुकुआहट पर आ जाते।

बलवन्ती को अपने तन-बदन का होश नहीं था। सरसुता ओढ़ने वाले टाट में लिपटी, उसके पेट पर ही सो गई थी, सवेरा होने के कुछ समय पूर्व, आंधी थमी और पानी रुका।

पड़ोसी जब प्रातः अपने-अपने घर के बाहर निकले, तो लोगों ने देखा, बलवन्ती अब तक वैसे ही पड़ी, और उसके सीने पर सरसुता पड़ी सो रही है। दो-चार स्त्रियां आपस में बात करने लगीं, कि कल भी सारे दिन बेचारी पड़ी ही रही थी। तबियत खराब थी, मालूम होता है, यह सरदी खा गई, राम राम दोनों मां-बेटी रात भर पानी में भीगती रहीं।

इसी प्रकार आपस में बातें करती हुई, वे बलवन्ती के पास आ गइ। एक ने पुकारा—'अरे बलवन्ती ! कैसी तबियत है तुम्हारी ? उठो, सबेरा हो गया।'

किन्तु उसका प्रश्न व्यर्थ रहा। तब दूसरी स्त्री आगे बढ़ी। उसने बलवन्ती का कन्धा पकड़ कर, हिलाते हुऐ कहा 'बलवन्ती !......।' लेकिन तभी सहसा एकदम चौंक कर बोले अरे बलवन्ती तो मर गई ?'

सब की सब पड़ोसिनें, बलवन्ती का मुंह देखने लगीं। एक ने उसके पेट पर से सरसुता को उठाया और जब वह जग गई, तो उसे गोद में ले रो-रो कर कहने लगी 'तू अब तक सो रही थी, अभागिन ! तेरी माँ चली गई !'

सरसुता उसी दम चौंक पड़ी और उसकी गोद से उतरने का उप-

क्रम करती हुई, कहने लगी 'माँ तो सामने पड़ी हैं, चली कहां गईं ? ये उठती क्यों नहीं ? मैं अभी जगाती हूं, कल स सो रही हैं ?' कहती हुई सरसुता उसकी गोद से उतर कर बलवन्ती का हाथ पकड़ कर खींचती हुई बोली 'उठो मां ? अब तो घाम (धूप) फैल गया है, गंगाजी नहीं चलोगी, कल भी नहीं गई थीं ?'

इस पर दुलारी जिजिया ने उसे अपने अंक में भर लिया और वहाँ से उसे लेकर, अपने घर चली गईं।

मुहल्ले के और जाति-बिरादरी वाले आये, कफन-काठी जोखू के मैकू मामा लाये थे। वह शव के आंसू बहाते हुये लोगों से कह रहे थे 'बलवन्ती के लिए चढ़ाये का लहँगा और चेनरी भी मैं ही लाया था, लेकिन तब यह नहीं जानता था कि एक दिन इसके लिये कफन-काठी भी मुझ ही खरीदना पड़ेगा। जिन्दगी भर आफतों से लड़ी। कभी हिम्मत नहीं हारी और जब मरी, तो उसके पास अपना कोई भी नहीं था, जो मरते समय एक बूंद पानी मुंह में डाल देता।

—०—

***

माँ की याद में सरसुता कई दिन तक रोती रही। दुलारी जिजिया उसे सब तरह से बहलाये रहतीं, किन्तु वह माँ की रट लगाये रहती थी। इसी प्रकार कई दिन बीत गये और सरसुता के मुंह पर एक क्षण के लिये भी हंसी नहीं आई। यह देख दुलारी सहम गईं। वे मुहल्ले वालों से कहने लगीं कि लडकी ससेट गई है, इसके कलेजे में डर समा गया है क्या करूं ? कहीं हुड़क-हुड़ककर यह मर न जाय,

मुहल्ले में ही धनीराम चमार रहता था। वयस आधी हो

और अब तक, उसने सन्तान का मुंह नहीं देखा था। घर में केवल दो प्राणी थे, पत्नी और वह। पैसा खूब था। चप्पलों का काम उसका खब बढ़ चढ़ कर चल रहा था। उसकी पत्नी लेखा एक दिन दुलारी के पास आई और उनसे यह विनय की कि अगर सरसुता उसे मिल जाय तो वह उसे गोद ले लेगी। उस खुशी में वह सत्यनारायण की कथा सुनेगी और सारी विरादरी को भोज देगी।

वस फिर क्या था। सारे मुहल्ले में चर्चा फैल गई, कि बलवन्ती की लड़की सरसुता को धनीराम गोद लेना चाहता है, अच्छी बात है, लड़की की तकदीर खुल जायेगी !

गोद लेने का मुहूर्त बना था वसन्त पंचमी का, तब तक सरसुता दुलारी जिजिया के पास रही। वसन्त पंचमी को सवेरा होते ही धनीराम के द्वार पर वैंड वाजा वजने लगे। सारा घर वुलावे में आई ब्योहारी स्त्रियों से भर गया। वाहर चवूतरे पर जाजम विछ रही थी, विरादरी के लोग वहाँ इकट्ठे हो रहे थे। ठीक चवूतरे के सामने ही अंगनू चौधरी की चौपार में दो भट्ठियाँ जलरही थीं एक पर वड़ा-सा कढ़ाव चढ़ा था, जिसमें पूड़ियाँ उतर रही थी और दूसरी में चढ़ा था, वरफी का कुन्दा, जिसे हलवाई धीरे-धीरे घोट रहा था।

यद्यपि घर का आँगन पक्का था, लेकिन फिर भी आज इस शुभ मुहूर्त में गाय के गोबर से वह लीपा गया। उसके वीचो-बीच ऐपन की चौक पूरी गई थी, जिस पर धान के आख़त (अक्षत) पड़े थे। मिट्टी का कलश रखा था और उस पर फूल की कटोरी में सात वाती का घी का दिया जल रहा था।

पण्डित आ गया। गोद लेने की रस्म पूरी होने लगी। लेखा लहंगा और चुनरी पहने पूरब मुंह चौक के पास वैठी और उसके दाहिने वैठा धनीराम। उसके कन्धे पर एक रेशमी दुपट्टा पड़ा था, जिससे पण्डित ने लेखा की चुनरी से गठबन्धन कर दिया।

सरसुता जिजिया उबटन से नहलाई गई और लेखा ने अपनी चुनरी से सरसुता की गीली देह पोंछी। दुलारी ने रेशमी पीला कुर्ता, लाल जाँघिया पहनाया तत्पश्चात् पैरों में चाँदी के छोटे-छोटे लच्छे, घुंघरूदार छागल, कमर में कन्धनी, हाथों में सोने के कड़े और गले में सोने का ही कठुला पहनाया गया।

रस्मे होने लगीं। दुलारी ने सरसुता को अबकी बार जैसे ही लेखा की गोद में दिया, उसने उसी क्षण उसे नवजात शिशु की भाँति अपनी चुनरी में छिपा लिया और अपना आँचल उसके मुँह से लगा दिया। बाहर उसी समय गोले छूटे। बाजे मधुर स्वरों में बज रहे थे। आँगन में बैठी हुई स्त्रियाँ ढोलक और मँजीरे पर मगल-गीत गा रही थीं।

जब यह रस्म पूरी हो गई तो पण्डित ने लेखा से कहा 'अब लड़की की आंखें आंजो और उसके सिर पर टोपी लगा दो। इसके बाद धनीराम उसको गोद में लेकर खिलायेंगे।'

लेखा ने जल्दी-जल्दी हौले-हौले हाथों सरसुता की आंखों में काजल लगाया, फिर गोटा जड़ी टोपी, उसके सिर पर रख उसे चूमती हुई, धनीराम की गोद में दे दिया। पण्डित ने गठबन्धन खोल दिया और धनीराम अपनी धर्म-पुत्री को गोद में लिये बाहर लोगों के बीच आ बैठे। पूरे दिन भर बड़ा उछाह रहा। गोद लेने की रस्म के बाद, सत्य नारायण भगवान की कथा हुई, सारी बिरादरी को पंचामृत और पँजीरी बांटी गई। इसके बाद पंगतें बैठने लगीं और जाफर चलने लगी।

आधी रात तक कार्यक्रम चलता रहा। लखा और धनीराम फूले नहीं समा रहे थे। लोग लड़की को आशीष दे रहे थे। लेकिन सरसुता खा पीकर सो गई थी, वह क्या जाने, कि पहले वह एक मंगती की लड़की थी, उसके बाद अनाथ हुई और अब लक्ष्मी-पुत्र, धनीराम की धर्म-पुत्री है।

—०—

समय चक्र तीव्रता से घूम रहा था जिसमें किसी का भाग्य बन रहा था किसी का बिगड़ रहा था। यहां पर दो पक्ष चल रहे थे, एक अन्याय से सराबोर था और दूसरा न्याय संगत। सरसुता के सातवें वर्ष में पदार्पण करते ही उसे पाठशाला भेज दिया था।

नेवाजी कानपुर से जाकर लखनऊ में ठहरा था। वह वहाँ से भी कहीं दूर जाना चाहता था, जिससे परिचित लोग बलवन्ती को साथ रखने के लिए विवश न करें। इसी उधेड़ बुन में वह मुसाफिर खाने में, इधर-उधर टहल रहा था। किन्तु वह कुछ भी निश्चय नहीं कर पाया और रात को वहीं बिस्तर बिछाकर वह सो गया। प्रातः जब आँख खुली, तो ट्रंक और गठरी दोनों ही गायब थे। कपड़े-लत्ते, रुपया-पैसा और बर्तन सभी कुछ उठ गया तो नेवाजी माथा पकड़ कर रह गया। पैसे का सदमा उसकी नस-नस में समा गया था। दिन भर पड़े पड़े वह सोचता रहा और पछताता रहा और साँझ होते-होते उसे ऐसा लगने लगा कि सारी देह रस्सी की तरह ऐंठ रही है। सिर में बहुत जोर का दर्द है। वह पीड़ा से परेशान हो उठा। तभी हलहला कर उसे जूड़ी चढ़ आई।

यह मलेरिया का ज्वर था, जो मुसाफिर खाने के मच्छरों की देन थी। नेवाजी तेज बुखार की आग में जल रहा था। उसकी सारी देह काँप रही थी और वह घुटने पेट में लगाये गुड़ी-मुड़ी हो, बिस्तर से बदन ढँकता हुआ, बुरी तरह काँप रहा था।

रात भर नेवाजी बुखार में तपता रहा। सवेरे जब ज्वर उतरा तो उसके सिर में बेहद पीडा थी और सारी नसें फुड़िया-सी तरक रही थीं। हिम्मत करके वह उठा, जेब में सिर्फ दो आने पैसे बचे थे। उसने बाहर आकर एक ठेले वाले के पास जा, एक आने की चाय पी, फिर एक आने

की बीड़ी, जेब में डाल कर वहीं बैठ गया। धूप निकल आई थी और वह उसे अच्छी लगी। वहीं पर बैठे-बैठे सोचने लगा, मैं नहीं जानता था, मेरे साथ यह अनहोनी हो जायेगी। अब क्या करूं? इस बुखार ने बीच में आकर ऐसी कमर तोड दी है कि अगर मैं यहां के चमडा बाजार में जाऊँ भी तो एक बीमार आदमी को कोई भी काम नहीं देगा। इसके अलावा बात एक यह भी है, कि में वहाँ जाना भी नहीं चाहता हूं। बाजार में जान-पहचान के लोग होंगे, मैं उनसे दूर ही दूर रहना चाहता हूं। बुखार न होता, तो कहीं जाकर मजदूरी ही करता। समझ में नहीं आता है क्या होगा? क्योंकि मेरे पास जहर खाने के लिए भी अब एक पैसा नहीं है।

धूप खूब चटक हो आई थी। नेवाजी परेशानी की मुद्रा में एक टक नीचे फुटपाथ पर लगे सुरमीले पत्थरों को देख रहा था। सहसा उसकी दृष्टि अपने दोनों पाँवों पर पड़ी। वह चौंक उठा और उसके मुँह से अस्फुट स्वर में निकल गया- 'अरे यह क्या? पैरों में सूजन कैसी?'

नेवाजी का अन्तर्मन उससे प्रश्न कर रहा था कि आज तक मैंने न कभी सुना और न कभी देखा, कि एक दिन के बुखार में आदमी के पैर सूज जाते हैं! यह क्या है? कहीं सर्दी के कारण, तो वरम (सूजन) नहीं आ गया है?

नेवाजी की उलझन अब चौगुनी हो गई थी। देर तक बैठे रहने से थक गया था, वह धीरे-धीरे उठा और मुसाफिर खाने की ओर चल दिया। वहाँ जब वह एक खम्भे के पास जाकर खड़ा हुआ तो अचानक उसकी दृष्टि सामने की पान की दूकान में लगे बड़े शीशे पर पड़ी। उसने देखा उसका मुँह भी कुछ फूला-फूला सा है उस पर ऐसी लाली छा रही है मानो पित्ती उछरी हो? प्यास से उसका गला सूख रहा था। नल पर जाकर उसने पानी से पेट भर लिया और फिर बिछौना बिछा, एक बीड़ी सुलगाकर, अधमरा सा वहीं लेट रहा। लेटते ही जूड़ी

फिर चढ़ आई, जी मिचलाया, पानी की उल्टियाँ होने लगीं। निकटवर्ती मुसाफिर उससे तनिक दूर हट गये और वह देखते-देखते, बुखार की बेहोशी में डूब गया।

× × ×

आठ दस दिन तक नेवाजी मुसाफिर खाने में ही पड़ा रहा। दिन में दो एक बार उसको जाड़ा देकर बुखार चढ़ आता और रात भर वह मुर्दासा पड़ा, मकराहता रहता था। उसकी सारी देह सूज गई थी और हाथों पैरों के नाखून, गुलाबी से स्याह होने लगे थे। इसके अतिरिक्त वह इतना भूखा था कि जरूरत पड़ने पर मंगतों के हाथ अपना बिछौना, चादर और तकिया सभी कुछ बेच चुका था। सिपाही उसे नित्य दुतकारते और खदेड़कर भगा देते। लेकिन मौका पाते ही, वह फिर अपना आसन जमा देता था। दो-चार दिन के बाद यह नौबत आ गई, कि मुसाफिर खाने में धँसते ही उसकी पीठ पर सिपाहियों के डण्डे बरसने लगते। वह बुरी तरह परेशान हो उठा, और चारबाग स्टेशन के सामने पार्क में स्थित मंगतों की बस्ती के बीच आकर पनाह ली। हाथों-पैरों की उगलियां फूलकर कुप्पा हो गई थीं, उसकी आकृति बिगड़ने सी लगी थी और कहीं कहीं अधिक सूजन के कारण, खाल फट गई थी, जिससे दिन रात रान पानी बहा करता।

धीरे-धीरे नेवाजी के दाहने पैर का अँगूठा आधे से ज्यादा गल गया। उसमें कीड़े पड़ गये, जिससे बदबूदार पीब बहा करता। उसकी सारी देह पर मक्खियाँ भिनभिनाया करतीं और अब हालत इतनी खराब हो गई थी, कि उसके पास इतनी दुर्गन्धि आती, जिससे मँगते भी उसे दूर भगाते रहते थे। उसे कोढ़ हो गया। नेवाजी की वृत्ति थी पार्क के सामने फुटपाथ पर बैठना और आने-जाने वाले यात्रियों से गिड़गिड़ाकर पैसा माँगना।

अक्सर नेवाजी बलवन्ती के प्रति सोचा करता, कि बलवन्ती भी

अन्धी हो गई है, अगर उसके पास जाकर रहूं, तो वह क्या करेगी ? वह खुद तो अन्धी है, फिर उसके कोई घर द्वार भी नहीं ! पता नहीं कहां भटक रही होगी। उसे अपना और लड़की का पेट भरना ही मुश्किल हो रहा होगा, ऐसी हालत में मेरा साथ वह क्या देगी ? अब समझ में आ रहा है, कि मैंने पाप पर पाप कमाये उसी का यह नतीजा है, कि आज मैं कोढ़ी बना, घूम रहा हूं ? जमालो की हत्या मैंने नाहक ही की, जबकि वह निर्दोष थी। उसकी नाक काटी और बूढ़ी हरदेई को मैंने कसाई की तरह पीटा। बुढ़िया की बात सच निकली कि नेवाजी तुम कोढ़ी होगे, तुम्हारे अंग-अंग से कोढ़ चुयेगा। अगर मैंने जुल्म यहां तक ही किये होते, तो गनीमत थी, बलवन्ती से तल्ला तोड़ना ही मेरे लिए नाश का कारण बन गया ! मैं कैसे सोच लूं, कि बलवन्ती मुझे अपने साथ रक्खेगी। क्योंकि जब मैं उसकी आँखें चली जाने पर अपने पास नहीं रख सका, तो वह मुझ कोढ़ी को अपने पास भी नहीं फटकने देगी।

इस तरह दो-तीन साल बीत गये और नेवाजी नरक की जिन्दगी जीता रहा। एक दिन मुसाफिर खाने की ओर से आ रहे एक आदमी ने नेवाजी की ओर कुछ गौर से देखा, फिर घृणा से मुँह बिचका कर डालीगंज जाने के लिये एक्के वाले से किराया तय करने लगा। उस आदमी के साथ उसकी अधेड़ स्त्री थी और थी सात-आठ वर्ष की एक बालिका। आदमी कूदकर एक्के पर बैठ गया और स्त्री अभी चढ़ने का उपक्रम कर रही थी, कि नेवाजी उठकर खड़ा हो गया और एक्के के पास आ, गिड़गिड़ाकर हाथ पसारता हुआ एक पैसा माँगने लगा। वह कह रहा था—'माई ! एक पैसा दे दो। भगवान तुम्हारा भला करेंगे।'
माँ ! ये तो हमारे नेवाजी अब्बा हैं, मेरी माँ को बहुत मारते थे, तभी तो वे मर गई।'

बालिका गौर पूर्वक नेवाजी की ओर देख रही थी, वह उसे मुखाकृति बिगड़ जाने पर पहचान गई और एक्के पर बैठी स्त्री से बोली—'अरे

एक्के पर बैठे हुये लेखा और धनीराम दोनों चौंक उठे और वे नेवाजी की ओर आँखें गडा-गड़ा कर देखने लगे।

बालिका सरसुना अब भी नीचे खड़ी थी। नेवाजी उसे पहचान गया था। वह वहाँ से भाग जाना चाहता था; लेकिन तब तक लेखा ने विस्मय-विस्फरित नेत्रों से उसकी ओर देखते हुये पूछ लिया—'अरे नेवाजी तुम ? तुम्हारा यह क्या हाल हो गया ? तुम ·· ।'

अभी लेखा की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि नेवाजी वहां से ऐसा भागा, मानों सिर पर पैर रखकर दौड़ रहा हो।

सरसुना एक्के पर बैठ गई और एक्का डालीगंज की ओर बढ़ने लगा। ये सब लोग अपनी एक रिश्तेदारी में जा रहे थे। वहाँ आज बारात आने वाली थी। धनीराम ने पहले सरसुना की ओर देखा, फिर लेखा के मुँह पर दृष्टि टिका, एक दीर्घ उच्छ्वास ले बोल उठा—'नेवाजी नरक का कीड़ा था, तभी वह कोढ़ी हो गया। वह दोजख का आदमी था। इसीलिए भगवान ने उसे दोजख की ही दुनिया में रक्खा। तुमने देखा लेखा, आदमी अपने पापों का फल जीते जी भोगकर मरता है।'

लेखा ने कुछ भी जवाब नहीं दिया। एक्का चला जा रहा था और सड़क पर का जन कोलाहल सबके कानों में गूँज रहा था।